टीका प्रधान

सूरज पालीवाल

धरती प्रकाशन

© सूरज पालीवाल

प्रकाशक : धरती प्रकाशन, गंगाशहर, बीकानेर-334001/मुद्रक : एस० एन० प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 / प्रथम संस्करण 1985 / मूल्य : पच्चीस रुपये मात्र / आवरण : चंचल।

Teeka Pradhan (Short Stories) : SURAJ PALIWAL

Price : 25.00

मां को
सश्रद्ध

श्रवण की वापसी

बापू की गिरफ्तारी की खबर सुनकर मेरा मन रेत की तरह ढह गया था। चारों ओर किंकर्तव्यविमूढ़ता के गुब्बार उड़-उड़कर मेरे साहस, ज्ञान और कर्तव्य को ताने से दे रहे थे। मेरी यह मजबूरी या कमजोरी है कि ऐसे सकट-काल मे मेरा सतुलन डगमगा जाता है। और मैं उस वक्त इस स्थिति मे कदापि नही रहता कि स्वविवेक से अपना निर्णय ले सकू। ऐसा ही इस समय भी हो रहा है। यह सकट अब तक के सकटो मे सबसे बडा, पीड़ादायक और हताहत करने वाला है। बापू की सारी जिंदगी की कमाई मिट्टी मे मिल गई। तिल-तिलकर जमा की गई इज्जत को जाते देख बापू किस तरह सधे होगे—यह अनुभव बड़ा कष्टकारक था।

चार घटे का लम्बा सफर पहली बार इतना बड़ा और भयावह लगा था। एक-एक क्षण हथौड़ा लिये शरीर मे कीलें ठोक रहा हो जैसे। स्मृतियां जब अपने समय के साथ धोखा देकर पुनः मानस मे प्रवेश करती है, तब उनका जो रूप होता है वह इतना सहज नही होता कि उसे उसी सहजता के साथ स्वीकारा जा सके। स्मृतियो की आख-मिचौनी कभी इतनी कष्ट-कारक भी होती होगी, शायद मैंने कभी अनुभव नही किया। चेतना के जिन तारो पर उनका घर्षण हो रहा था, अब वे शायद फ्यूज हो उठे थे। मोटर के साथ आती धूल भरी हवा और यात्रियो की भीड-भाड़ मे अलग मैं पिछली सीट के एक कोने मे दबा-सा बैठा रहा। दच्चियों की उठा-पटक शरीर को और भी अस्थिर किये थी।

गांव मे सब कुछ एक ढर्रे की तरह चल रहा था। किसी के चेहरे पर स वेदना के दो बोल भी नही फूट रहे थे। गर्दन नीची कर मैं घर आ

गया। चबूतरे पर अम्मा बैठी थी—अकेली। माथे से जरा नीचे घूघट और घुटना ऊपर को किए अम्मा शायद मेरी प्रतीक्षा ही कर रही थी। उनके चारो ओर विषाद की ऐसी रेखा खिंची थी कि वहा सिवाय हल्की सी दबी-पिसी सास के अलावा और कुछ आ-जा नही रहा था। अम्मा ने दूर से ही मुझे देख लिया था। लेकिन पहले की तरह वे उठकर खडी नही हुई थी और न उनके इर्द-गिर्द मेरे आने की खबर ने कोई सरगर्मी ही की थी, बल्कि एक सन्नाटा-सा और बुन गया था, एकाएक। अम्मा की सासें इस सन्नाटे मे स्पष्ट सुनाई पड रही थी। मुझे देखकर सासें और भी जोर से बढ़ गई थी।

पास आकर जैसे ही मै उनके पैर छूने को झुका तो अम्मा फफक पडी। मेरे साहस का बाध बहुत कोशिश के बावजूद पहले ही टूट चुका था। अम्मा के गर्म आसू मेरे शरीर के पोर-पोर मे उनके कष्ट की दस्तक-सी दे रहे थे। वे इतना रोई कि उन्हे और कुछ कहने-सुनने का होश ही नही रहा। मेरी स्थिति पलटी नाव के सहयात्रियो जैसी थी, जो साथ-साथ जीवन-मरण के कष्टो मे बह रहे थे, लेकिन चाहते हुए भी एक-दूसरे की कोई सहायता नही कर पा रहे थे।

रात मे अम्मा ने खाना तो बनाया, मगर खाया हम दोनो ने ही नही। खाना पेट भरने के लिए ही नही खाया जाता। यदि ऐसा होता तो आदमी सुख-दुख मे कभी भी खा सकता था। खाने का सम्बन्ध शायद मन से है। अम्मा की लाख कोशिश के बावजूद भी मुझसे नही खाया गया। इसी वक्त अम्मा ने आंगन मे बैठकर बापू की गिरफ्तारी का सारा किस्सा मुझे सुनाया था। सुनाने से पहले अम्मा ने गहरी सास ली थी—बस और. .

अपनी जिन्दगी मे पहली बार बापू ने सरकारी कर्ज लिया था। भूमिहीनो के लिए सरकार द्वारा भैंस खरीदने पर कर्ज मिला था। सरकारी कर्ज पर बापू का विश्वास नही था। बहुत कहने पर उनका एक ही उत्तर था—गाव का कर्ज अच्छा, जिसे जैसे-तैसे करके चुका दो किन्तु सरकारी कर्ज मे पटवारी से लेकर अफसर तक पचास खसम। सबको मनाओ, कुछ न कुछ खिलाओ। और कर्ज न चुकाने पर जेल की हवा। गाव मे कम-से-कम इतना नही है। गाव वाले को थोड़ी बहुत शर्म भी रहती है और यह भी

खयाल रहता है कि इस साल नहीं है, तो अगली साल दे देगा। और न भी होने पर फांसी तो है नहीं उसके हाथ में। मगर सरकार—जो चाहे करा दे। यही एकमात्र कारण है, जिस वजह से बापू ने आज तक सरकारी कर्जा नहीं लिया।

तीन हजार रुपये मंजूर हुए थे, बापू के नाम, बहुत दौड़-भाग के बाद। पांच सौ रुपये पहले ही खर्च हो गये—मंजूरी के चक्कर में। एक महीने तक बापू की नींद हराम हो गई थी। रोज जाते ब्लाक। शाम को आकर बापू अफसरों और कर्मचारियों की हरामखोरी पर गालियां बकते और फिर चुपचाप आकाश की ओर आखें बिछाकर चारपाई पर पड़े रहते। खुली आखों में हरे-हरे नोटों की जगह वसूली का अमीन और उसका चपरासी आता। वे डर जाते। नींद भी मुश्किल से आती। बड़बड़ाना उनकी आदत-सी बन गई थी।

रुपये मिलने पर बड़े बाबू के आदेशानुसार बापू कल्लू व्यापारी से भैंस ले आये थे। भैंस के पुट्ठे पर जब नम्बर गोदा गया तो बापू उस पीड़ा से चीख पड़े थे। उन्हें लगा कि यह भैंस के पुट्ठे पर नहीं—बल्कि उनकी पीठ पर लोहे की गर्म मशीन से दागा जा रहा है—"सरकारी कर्जदार।" भैंस लेकर बापू कई दिन तक उदास से रहे थे।

एक-एक दिन गुजरता गया—एक साल भी खत्म होने को आ गई किंतु, बापू पर कभी इतना पैसा इकट्ठा नहीं हुआ कि वे एक किस्त भी जमा कर दें। दूध बिकता कम, मुफ्त में ज्यादा जाता; गरीब आदमी किसी से मना भी तो नहीं कर सकता—गांव का रहना-सहना, कब किसके काम पड़ जाये। और घी कभी बी० डी० ओ० का चपरासी ले जाता और कभी बड़े बाबू। न देने पर किस्त की धमकी। बापू का मन ऐसी स्थिति में जल उठता, लेकिन कह नहीं पाते। अम्मा भी कहती तो धीरे से कहते—मुझे ही कौन अच्छा लगता है ऐसा करना, लेकिन मजबूर आदमी अपनी मर्जी से काम कर ले तो मजबूरी फिर क्या रही? अपने बेटे के होते हुए घी दूसरे खायें—सब भाग्य का दोष है। कहते हुए बापू की आखें भारी हो जाती और होंठ कांपने से लगते। अम्मा इस स्थिति को देखकर चुप हो काम करने लग जाती। बापू बहुत देर तक आखें खोले एकटक देखते रहते। चेहरे

की बनावट कुछ अजीब-सी हो जाती।

अम्मा की चुप्पी न आंधी से पहले की तरह थी और न समुद्र की तरह, बल्कि एक इंसान की संवेदनशील चुप्पी थी। उनका चुप मन अन्दर ही अन्दर टूट-सा जाता। घर में पैसा कहां है। एक चीज भी अब नहीं बची, जिसे बेचकर कुछ काम चल सके। बापू जितना कमाते, उतना घर खर्च के लिए भी पूरा नहीं था। ऊपर से बापू की बीमारी। गरीबी बीमारी की जड़ होती है और यही लाइलाज बीमारी बापू को है।

अम्मा ने यह भी बताया कि जाते समय बापू यह भी कह रहे थे कि—मैं जानता था कि यह स्थिति एक दिन आयेगी, इसी से बचना चाहता था जिससे बुढ़ापे में इज्जत बची रह सके लेकिन तुम लोग कहा माने! अम्मा की आवाज में बापू का दर्द आ गया था। आदमी जिसे जिंदगी भर स्वीकार न करे, अन्त में वही स्वीकार तो क्या करना भी पड़े तो, वह किस कदर अन्दर तक टूट जाता है, वही जानता है। ऐसे में जिंदगी अचल हो जाती है। जिंदगी का रहस्य भी तो यही है, जिसे हम चाहते हैं, यदि वही मिल जाये तो फिर जिंदगी क्या बाजीगर का खेल हो जाती है—जो चाहो सो पाओ। यह बाजीगरी जिंदगी में नहीं चल पाती। इसलिए बापू ने जो चाहा, वह उन्हें नहीं मिला और जो मिला, वह इस कदर विपरीत था कि उसे पाकर उनका मन और भी दुःखी हो उठता।

इकलौता बेटा भी नालायक निकले, तो जिंदगी का रहा-सहा आसरा भी खत्म हो जाता है। मेरी नौकरी न लगने के कारण बापू के कष्ट और बढ़ गये—ऐसा होना स्वाभाविक भी था। किन्तु मैं चाहते हुए भी कुछ नहीं कर सका। इसी कारण बापू की यह मान्यता और भी प्रबल हो गई कि मैं कुछ नहीं करना चाहता। उनका यह कथन एक भारतीय बाप की पीड़ा की अभिव्यक्ति थी और मेरी सफाई मेरी मजबूरी के अलावा और कुछ भी नहीं।

नौकरी न मिल पाने के कारण घर की जो हालत है, उसे अम्मा के लाख छिपाने के बावजूद मैं अच्छी तरह जानता हूं। अम्मा की चिथड़े-चिथड़े धोती, पिछली बार जब बुआ आयी थी, तब दे गई थी। अम्मा चाहकर भी मना नहीं कर सकी थी। बुआ समझती थी कि अम्मा को यह

अच्छा नही लग रहा, लेकिन अच्छे लगने से ज्यादा आवश्यकता की अहमियत है। अच्छी तो बहुत-सी बातें नही लगतीं, लेकिन जिंदगी जीने के लिए उन्हे भी स्वीकारा जाता है। अम्मा चूकि एक सामान्य औरत हैं, मतलब कि, हर हाल में जीनेवाली, इसलिए वे चुप हो सब-कुछ सह लेती हैं। यही कारण है कि बाहर से शायद ही कभी वे बीमार रही हों, परन्तु मन से शायद ही कभी ठीक। बाहर की स्थिति को हर कोई देख-समझ सकता है, मन को कौन जाने। अम्मा का मन है कि दर्द का संग्रहालय। जब भी कोई नया दर्द मिला—रोईं नही, चीखी नही, किसी से कुछ कहा नही, बस आखें गीली हुईं और पी लिया सब कुछ। कही बापू को न मालूम पड जाये और कहीं नम आखो मे मेरी आखें न समा जायें, इसलिए सब-कुछ चुपचाप चलता रहा।

शहर में मेरे पास खबर भेजते समय अम्मा ने यह भी कहला भेजा था कि मैं चाचा को साथ ले आऊ और यदि वे न आयें तो उनसे कुछ रुपया उधार ले आऊ। चाचा ने न रुपये दिए और न वे आए। अम्मा ने सिर्फ पूछा भर था कि उन्होंने क्या कहा है। मेरे मना करने की कहने पर अम्मा के होठ सिर्फ थरथराए थे। निश्चित ही चाचा का यह व्यवहार अम्मा को बुरा लगा होगा। जिस भाई को बापू ने अपने बेटे की तरह पाला और अम्मा ने दुलारा, आज वही गैरों जैसा व्यवहार करे तो बुरा लगना स्वाभाविक ही है। आज तक अम्मा ने इतनी बुरी बातें सही हैं कि अब ऐसी बातें उन पर कुछ असर नही करतीं। सिवाय इसके कि कुछ क्षण को वे और उदासी के सागर में डूब जाती है और फिर धीरे-धीरे किनारा पा लेती हैं।

अगारे की मानिंद जलती आखें अम्मा ने ऊपर उठायी और बताया कि एक हजार रुपये जो तुम्हारी फौज की नौकरी के लिए रामबगला के हवलदार को दिए थे, उसने नही लौटाए—अभी तक। कई बार बापू के कहने के बाद भी। रुपये न दे पाने के कारण पुजारी भैंस खोल ले गया है। अम्मा की पलकें नीची हो गयी—स्वतः ही।

हवलदार रुपये दे दे तो कुछ काम संभव है। लेकिन जब बापू के कहने पर ही नही दिए तो मेरे कहने से कैसे दे देगा। गाव में रुपया उसी का

वसूल होता है, जिस पर चार-छः लठैत हों और हो पुलिस का सरक्षण। बापू मे ये दोनो गुण नही हैं, इसलिए पैसा वसूल नही हुआ। अतः बापू सतोष करके बैठ गये। निर्बल आदमी सतोष के अलावा कर भी क्या सकता है। निर्बल हृदय सतोष की उर्वर भूमि होता है।

अम्मा ने गाव मे और लोगो से भी रुपये उधार मागे थे, लेकिन जिस पर कूड भी खेती न हो और खूटे पर एक भी जानवर, उसे रुपये तो क्या कफन भी नही मिलता—आजकल। अब वह जमाना नही, जिसमे एक आदमी दूसरे की सहायता करे।

गाव मे रुपये न मिलते देख मैं रामवगला गया। यह जानते हुए भी कि वहा से खाली हाथ आना पडेगा। आदमी सकट मे परखे हुए को भी परखने की कोशिश करता है। हवलदार के पिता ने मूछो पर हाथ फेरते हुए साफ कह दिया कि लेन-देन के मामले मे वही जाने, न तो मुझे तुमने दिये और न मुझे कुछ मालूम। वापिस आ गया। लौटते समय मुझे लगा कि मेरे पाव भी शायद वही रह गये हैं। आखों के आगे तिलूले नाच रहे थे।

बापू अभी जिला जेल नही भेजे गये थे—कुछ आमदनी के चक्कर मे उन्हे थाने में ही रख छोडा था। मैं अपनी समस्त हिम्मत बटोरकर सुबह थाने गया। अम्मा मेरे कहने के बाद भी नही आयी। शायद वे इस दृश्य को बर्दाश्त नही कर पाती। थाने के अन्दर हवालात के सीखचो मे बद बापू। गर्दन घुटनों के अन्दर, सिर के बाल अस्त-व्यस्त, कधो पर फटी कमीज और घुटनों तक धोती। बापू की इस अवस्था को देखकर मैं काप उठा था। हिम्मत जुटाकर मैंने कुछ कहना चाहा, मगर गला इतना भारी हो गया था कि शब्द बाहर निकल ही नही पा रहे थे। अचानक कुछ हवा में गूज उठा—बापू ने गर्दन उठायी। मुर्झे चेहरे पर कुछ तरगित हुआ। सफेद दाढ़ी में छुपी कानी आखें चौंड गईं। माथे की झुरिया और गहरी हो गयीं। बापू टकटकी बाधे मुझे देखते रहे। यकायक अन्दर से मजबूत हथकडों में जकडे हाथ बाहर आने को आतुर हो उठे, लोहे के डडो से थोडी निकली उगलिया कुछ पाने को लपलपा उठीं। मैं कुछ सुना तो मेरी आखों ने दो बूद टपका दीं। बापू की आखें गीली तो थी मगर आसू बाहर

नही निकल पा रहे थे। कापते होठों से बापू ने अम्मा का हाल पूछा था और फिर चाचा के संदर्भ में... । पूरी बात वे कह नही पाये थे कि बीच में ही उनकी आखें बह चली। स्थिति की भयावहता को मैं समझ रहा था। लेकिन ऐसे समझने का क्या अर्थ—जिससे समस्या का कोई समाधान ही न निकले।

बापू के थरथराते होठ कुछ कहना चाह रहे थे···। ध्वनिहीन शब्द कानो मे नही, मन मे सुनाई दे रहे थे। लेकिन एक बेरोजगार बेटा ऐसे में क्या करे—यह समस्या मेरे सामने थी। अचानक मुझे लगा कि सरकारी कर्ज का दाग भैंस के पुट्ठे पर नही, बल्कि मेरे शरीर के एक-एक हिस्से मे दागा जा रहा है। और हथकड़ी बापू के हाथों मे नही, मेरे अस्तित्व को जकड़ गई है। मेरी संवेदना हवालात के सीखचों में कैद हो गई। शहर भेजते समय बापू के कहे ये शब्द आज पहली बार कितने थोथे लग रहे थे—"जिस बाप पर जवान बेटा हो उसे किसी बात की चिंता नही रहती।" और बचपन में मुझे इतना आज्ञाकारी बनने की शिक्षा देना कि मैं उनकी इतनी सेवा करू कि उनकी जिंदगी के सारे घाव धो डालू। तभी वे अम्मा से लाड में भरकर कहा करते—देखना मेरा बेटा श्रवण कुमार बनेगा—एक दिन। और फिर लगातार चूमते रहते—गोदी में बैठाकर।

बापू का वह आत्म-विश्वास कितना खोखला था। खोखले विश्वासों और रेत-सम्बन्धों की दुनिया मे खड़े बापू आज अपने को अकेला और असहाय अनुभव कर रहे हैं। यही अहसास ··बापू की आखें बरस रही हैं।

और उनका श्रवण असहाय हो वापिस लौट रहा है—बापू के विश्वास की अर्थी उसके कंधे पर नही, सिर पर है और अम्मा की ममता मन के अंदर जमे हिमखंड को पिघला रही है। डग-डग करती जमीन उसके भारी पैरों को सहते हुए अनमना रही है। यह निरीह स्थिति···। श्रवण जाते समय दशरथ ने अपने प्यासे मां-बाप को पानी पिलाने को कह गया था, लेकिन बापू के विश्वासों का श्रवण इस स्थिति में भी नही है—आज!

पुल

गाव की बहुत बडी इच्छा पूरी हुई। पहले चुनावो से तो क्या, जब देश आजाद हुआ था, तभी से लोगो ने मसूबे बाध रखे थे कि अब तो अपना राज्य आ गया, निश्चय ही अब हर साल भयावह तबाही मचाने वाले नाले पर पुल बधेगा। गाधी महात्मा यही तो चाहते थे कि अपने लोग जब सरकार में मत्री बनेंगे, तब अपनी समस्याओं को स्वय हल करेंगे। इस गाव के समस्त जन-मन की एक ही इच्छा है कि नाले पर पुल बधे। वह अब पूरी होने जा रही है—सैंतीस साल बाद। प्रतीक्षा करते-करते न जाने कितने लोग स्वर्गवासी हो गये और कितनों की आखें ही छिन गईं।

पैंट, पेट और गले में टाई लगाकर कुछ गजाती चांद के अफसर आये थे, दो जीपें भरकर। ज्यादातर ने काले चश्मो से अपनी आखें ढक रखी थी, पता ही नही पड़ा कि कौन किस तरफ देख रहा था। जीप से उतर कर चपरासीनुमा मरियल आदमियो ने अदर से सामान उतारा। जजीरें, फीते, दूरदर्शी-यत्र और भी बडी-छोटी मशीनें साथ लाये थे। गाव में खबर फैल गई। जो जैसा था, वैसा ही उठ भागा। प्राइमरी स्कूल की छुट्टी हो कर दी। वैसे भी मात्र अध्यापको में से एक आया है, और दूसरी स्वर्णलता—जिसका आना-न आना ही बेकार। स्वेटर बुनने से फुरसत नही मिलती। जूनियर हाई स्कूल के तो पिछवाड़े ही यह सब हो रहा था इसलिए वहा पढ़ाई हो, यह कैसे संभव था? हैड मास्साब मैनेजर की चौपाल पर हुक्का पी रहे थे और दूसरे नम्बर के मास्साब के खेत में नहर के पानी का ओसरा था अत: वे अपने खेत में पानी लगवा रहे थे। लड़को को बहाना मिल गया। नाले की पार पर भीड़ लग गई। ऐसी भीड़ तो अब

किसी मेले-तमाशे में भी नही लगती। ग्यानू भगी ने कह दिया था कि गुड वंटेगा। इसलिए रहे-सहे भी दौड़ गये—गुड़ का लालच और वह भी सदियो में। गांव के अधिकाश लोगों के लिए गुड़ अमृत के समान है। जिंदगी में कुछ ही दिन आये होंगे जब गुड से रोटी मिली होगी।

भीड के कारण सरकारी कर्मचारियो को काम करने मे असुविधा हो रही थी। मोटा-सा आदमी जजीर लेकर इधर-उधर लोगों को हटाता जा रहा था। बाबूलाल भी आ गया था। उसने अब खादी का कुर्ता-पाजामा और ऊपर मे लाल इमली का शाल लपेटना शुरू कर दिया है। पिछली साल ही मथुरा से पडकर लौटा है। सारे गाव में वह सबसे ज्यादा पढा-लिखा है। सुनते हैं सोलह पास है। तीन साल में की है—दो क्लास पास। एक साल मजबूती के कारण परीक्षा ही नही दी। पढा इतना है कि सिर के बाल भी उड़ने शुरू हो गये है।

शाम तक नाप-जोख होती रही। जाते समय अफसर लोग बाबूलाल के घर भी गये। वही बैठकर चाय पी। सुनते हैं प्रधान जी के बारे मे पूछा कि वे कहा हैं—तो चिलमभरा चंटू ने झटाक् से कह दिया—'शराब पीकर पडा होगा, कहो। और कहां होगा।'

अफसरो पर बाबूलाल का अधिक प्रभाव पडा। गाव के असली नेता के रूप मे उसे ही मान्यता मिल गई। मथुरा आने का निमंत्रण भी दे गये। और कह गये हैं कि यदि कुछ काम हो तो सीधे चले आना, अपना ही घर समझकर। बाबूलाल ने 'जरूर-जरूर' दो बार कहा था—हँसते हुए। अफसर जीप में बैठे तब तक वह उनके साथ ही रहा।

एक साल मे ही बाबूलाल की नेतागीरी चमक गई। पिछले साल तक गाव में उसे कोई नही पूछता था। उल्टे उसके बारे में किस्से और चल निकले थे कि—मथुरा में कोई ईसाइन है, उसमें फस गया है, रोज शराब पीता है, शहर के नामी बदमाशो से उसके निजी सम्बन्ध हैं। गाव आकर कुछ दिन वह शांत रहा। एकाध महीने में ही उसने ब्लॉक और थाने जाना शुरू कर दिया था। अच्छी जमीन है। ट्रैक्टर अभी नही लिया है। घर पर दो कुवारे चाचा है—जो रात-दिन खेती के काम मे लगकर धीरे-धीरे बुढा रहे है। पिता पिछली साल ही मरे हैं इसलिए घर में फालतू समय

भी है और खाने की भी कमी नहीं है। नेतागीरी तो तभी हो सकती है, जब घर में खाने-खरचने की कमी न हो—भुखमरा आदमी क्या खाकर नेतागीरी करेगा?

बाबूलाल की नेतागीरी ऐसी चमकी कि अब उसे फुरसत ही नहीं है। हर समय घिरा रहता है। नौकरी लगवाने से लेकर ब्लॉक से खाद-बीज तक के लेन-देन में वह प्रमुख रहता है। मोटर-साइकिल भी खरीद ली है। आवाज ऐसी कि थानेदार की मोटर साइकिल भी फीकी पड़ जाती है, उसके सामने। चेहरे पर एक अतिरिक्त चमक आ गई है, बात करते समय भी रोब मारता है।

प्रधान जी ने शिकायत भेजी है। खुद कलक्टर से मिलने भी गये थे, लेकिन उसने मिलने से मना कर दिया। लिखकर दे आये हैं कि पुल की पैमाइश नहीं हुई। जो कर्मचारी गये थे उन्होंने अपनी मन-मर्जी से काम किया है। गाव के किसी मोअज्जिज आदमी से नहीं मिले और न मुझसे ही। शिकायत की एक-एक प्रति मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री को भी भेज दी है। गाव में आकर ध्यान में बात आयी कि राष्ट्रपति को भी तो शिकायत की एक प्रति भेजनी चाहिए थी, इसलिए दुबारा कल फिर मथुरा जायेंगे। वहीं टाइप कराकर रजिस्ट्री करेंगे। गाव से तो रजिस्ट्री भी नहीं कर सकते। विरोध का मामला है—न भेजो तो। पोस्ट-आफिस में पिछले आठ मास से मुकदमा चल रहा है। हर आदमी डाकिया होना चाहता है—दो सौ रुपये मुफ्त के हैं। चार-छह चिट्ठियां आती हैं, वे बांटो और निधड़क हड़ पेलो। इसीलिए एक-दूसरे के पीछे पड़े हैं।

चंदू ने नई अफवाह फैलाई है कि पुल बनवाने में पूरा हाथ बाबूलाल का है। हर अफसर उनकी बात मानता है। पिछले दिनों जब मथुरा गये थे, तब बड़े-बड़े अफसर इतने प्रसन्न थे कि कहने ही क्या। कहने लगे—बाबूलाल जी कोई सेवा हो तो बताना। बाबूलाल कहां चूकनेवाले, झट से कह दिया—सेवा अपनी निजी नहीं सारे इलाके की है—बरौठ गाव पर नाले का पुल बंधना बहुत जरूरी है। सारा इलाका परेशान है। हर साल दस-चार आदमी डूबकर मर जाते हैं। मोटे-मोटे चेहरों वाले अफसर झेंपिया पड़े थे, नेता हो तो बाबूलाल जैसा। अपने काम को आज तक

नहीं कहा और सारे इलाके का दु:ख दूर करने के लिए कितना बेचैन है। मैं तब साथ में था। मेरी तो सिट्टी-पिट्टी सब गायब हो गई थी, उनकी हँसी देखकर। इतने जोर से हँसते हैं—कमला भगत रावण बनकर क्या हँसता है? पान रचे मुँह एक-एक किवाड़ खुल जाते हैं। तभी उन्होंने पैमाइश की बात कही थी और बरसात आने से पहले पुल बंधने की पक्की गारंटी। चैंटू सुबह से शाम तक मुफ्त का हुक्का पीता फिर रहा है। बातें ऐसे गढ़ता है, जैसे कितना बड़ा आदमी हो। जिस ढंग से कहता है—प्रभावित करता है।

मंगी मास्टर सावलिया की दुकान पर बैठकर खैनी रगड़ता हुआ बता रहा था कि पुल की मंजूरी नई नहीं है। कई साल पहले का मंजूर हुआ पड़ा था। बहुत पहले बन गया होता, बीच में सोशलिस्ट पार्टी का एम० एल० ए० न जीतता तो। सरकार अब इस गाँव से नाराज है। वह अब कुछ भी नहीं करना चाहती। प्रधान जी पर तो प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री के पत्र आते रहते हैं। लगातार प्रधानजी पुल बनने की बात दुहराते रहे हैं। लेकिन दिल्ली और लखनऊ से एक ही बात रिपीट होती है, कांग्रेस को क्यों हराते हो? हमारे आदमियों को हराओ भी और हमसे ही सुविधा चाहो, यह कैसे संभव है? प्रधान जी ने अगले चुनाव में कांग्रेस को जिताने का पक्का वायदा किया है। तब पैमाइश हुई है। और पुल ही क्यों, अस्पताल, पानी की टंकी और सड़क सभी मंजूर हुए पड़े हैं। प्रधान जी इस गाँव को सुरग बना देना चाहते हैं, गाँव का सहयोग मिले तो। मंगी मास्टर प्रधानजी का खास आदमी है। सारा घर लोकदल का कट्टर समर्थक है, लेकिन अकेला आदमी है घर में, जो कांग्रेस का परम भक्त है। खैनी खाते-खाते दाँत खराब हो गये हैं। मोटी खादी का कुर्ता और धोती पहनता है। सिर पर हल्के-हल्के बाल। रंग साँवला, चेहरे की छवि प्रभावशाली है। जब भी बात करता है अपने मतलब की। कांग्रेसी आदमी है, इसलिए गाँव में तबादला नहीं होता। सोशलिस्टी एम० एल० ए० ने कई बार कोशिश की है लेकिन शिक्षा-अधिकारी जानता है, मंगी सिंह की पहुँच कहाँ तक है।

सांवलिया की दुकान गाँव का सूचना-केंद्र है। कैसी भी खबर हो,

सबसे पहले वही पहुचती है। फालतू आदमी समय कहा काटें, इस लिए वही बैठे-बैठे इधर-उधर की हाकते रहते हैं। सावलिया का मन भी लग जाता है और दुकान भी चल जाती है। गाव मे दुकाने भी तो सम्बन्धो के आधार पर चलती हैं, कोई गरीब-गुरबा खोल ले दुकान, देखें कैसे चलती है? कोई बैठना भी पसद नही करेगा—वहा। सावलिया जाति का पडित है। दुकानदारी इतनी कि कम फुरसत मिलती है। अपना एक बीडी-बडल दिन भर मे खर्च करता है, लेकिन दूसरे की दुगुनी बीडी पी जाता है। पिछले जन्म का बनिया है—पक्का।

प्रधान जी की अनुभवी आखो ने भविष्य पढ़ लिया। इसलिए जब कलक्टर नही मिला तो लखनऊ चले गये। लखनऊ मे उन्हे मथुरा जिले के दूसरे एम० एल० ए० अच्छी तरह से जानते हैं। मत्री भी जानता है। जानता क्यो नही, पहले वकील तो था ही। बैठे-बैठे मक्खी मारता रहता था बिल्कुल नही चलती थी उनकी वकालत। राजनीति की करामात कि चुनाव लडे, एम० एल० ए० हुए और पहली ही बार मे मत्री भी बन गये। प्रधान जी ने कलक्टर को फटकार लगवा दी है। लखनऊ से वापसी मे सोचा कि कलक्टर से भी मिलते चलें तो देखकर अचम्भे मे रह गये। रिरिया रहा था। अब दुबारा बदमाशी न करने का वायदा किया है। प्रधान जी ने सिर्फ मगी मास्टर से ही कहा है कि अब पुल जिदगी भर नही बनेगा। लेकिन तुम ऐसा प्रचार करो कि प्रधान जी पुल के साथ सडक और पानी की टकी की मजूरी भी ले आये हैं।

प्रधान जी गांव मे कम लोगो से ही बात करते हैं। दिन मे जिसे जरूरी हो मिल लो, रात मे तो उन्हे खुद होश नही रहता। पूरी बोतल चढ़ा जाते है। लेन-देन का हिसाब दिन मे ही चलता है। एक जगह का चार बार पट्टा कर दें और चारो से ही पैसा खा जायें। बाबूलाल क्या खाकर नेतागीरी करेगा? नेतागीरी कभी बाबूलाल के पुरखो ने भी नही की। प्रधान जी बाबूलाल से बहुत नाराज हैं। वह जो कहता है, उसकी काट पहले ही तैयार करके रखा देते हैं।

बाबूलाल ने गाव की पचायत बुलाई है। पचायतें शायद ही कभी पचायतघर पर हुई हों, वहा तो गज्जो सिंह का कब्जा है। पचायतघर

में भैंस-बैल बाधते हैं और वही स्वय पड़े रहते हैं। गज्जी सिंह ने चांदी के जूते मारे हैं प्रधान जी के सिर पर—कोई संत में ही थोड़े है। इसलिए पचायतें देवालय पर होती हैं। चंटू सुबह से ही लट्ठ ताने फिर रहा है। औरतों तक को उसने बता दिया कि प्रधान लखनऊ जाकर पुल बनाने की मना कर आया है। जिसने भी सुना वही गुस्से मे हो गया। बड़ी मुश्किल से तो पुल बनने की नौबत आयी और उसमें भी अड़गा। औरतें तरह-तरह की गालिया दे रही हैं। जो मन मे आ रहा है, वही कह रही हैं। घूघट की ओट मे हर खुला मुह गाली बक रहा है—प्रधान जी को।

गाव मे ज्यादातर आदमी अब तक यही समझते थे कि चंटू सिर्फ मुफ्त का हुक्का पीने वाला है। लेकिन अब मालूम पड़ रहा है कि उनकी समझ गलत थी। जिस तरह चंटू ने घर-घर जाकर प्रधान के विरोध मे वातावरण बनाया है, उसकी उम्मीद प्रधान जी को भी नही थी। प्रधान जी के खेमे मे मुर्दनी छा गई है। जब सारा गाव एक हो तब अकेले प्रधान जी और उनके चपरकनाती क्या कर लेंगे?

पुलिस आ गई। हाथ में डंडे और कंधे पर राइफल। दस सिपाही और हैड-कास्टेबल आये हैं। कुछ देवालय पर बैठे बीड़ी पी रहे हैं, कुछ गांव के चक्कर लगा रहे हैं। गलियों मे कुत्तो ने भौक-भौक कर कुहराम मचा रखा है। हेड-कास्टेबल प्रधान जी की बैठक मे सो रहा है। दिन निकले ही पूरी बोतल चढ़ा गया है।

बाबूलाल अंदर कमरे मे बैठा चंटू को समझा रहा है—अब धीरज से काम लेना। पुलिस का मामला है। कही कुछ गड़बड़ हो गई तो सब करा-धरा बेकार हो जायेगा। प्रधान यही चाहता है कि हम उसे गाली-गलौज दें, मारने-पीटने की धमकी दें, जिससे पुलिस उसकी रक्षा करे। तुम ध्यान रखना। अपने लोगों को पहले ही समझा देना। तेल चुपड़ी लाठिया अभी साथ न लायें, उसका मौका अभी नही आया है। इस पचायत मे जितना हो सके धीरे-धीरे यह बताना है कि "प्रधान गाव मे कोई काम नही होने देना चाहता है। हम जिस काम को ऊपर से पास कराकर लाते हैं, उसमें यह टाग अड़ाता है, यही वजह है कि अब तक इतने बड़े गांव में कुछ भी सुविधा नहीं है।" बाबूलाल धीरे-धीरे चंटू को समझाता

में भैंस-बैल बांधते हैं और वही स्वय पड़े रहते हैं। गज्जी सिह ने चादी के जूते मारे हैं प्रधान जी के सिर पर—कोई सैंत मे ही थोडे है। इसलिए पंचायतें देवालय पर होती हैं। चैंटू सुबह से ही लट्ठ ताने फिर रहा है। औरतों तक को उसने बता दिया कि प्रधान लखनऊ जाकर पुल बनाने की मना कर आया है। जिसने भी सुना वही गुस्से मे हो गया। बड़ी मुश्किल से तो पुल बनने की नौबत आयी और उसमे भी अडगा। औरतें तरह-तरह की गालिया दे रही हैं। जो मन मे आ रहा है, वही कह रही हैं। घूघट की ओट मे हर खुला मुह गाली बक रहा है—प्रधान जी को।

गांव मे ज्यादातर आदमी अब तक यही समझते थे कि चैंटू सिर्फ मुफ्त का हुक्का पीने वाला है। लेकिन अब मालूम पड रहा है कि उनकी समझ गलत थी। जिस तरह चैंटू ने घर-घर जाकर प्रधान के विरोध मे वाता-वरण बनाया है, उसकी उम्मीद प्रधान जी को भी नही थी। प्रधान जी के खेमे मे मुर्दनी छा गई है। जब सारा गाव एक हो तब अकेले प्रधान जी और उनके चपरकनाती क्या कर लेंगे?

पुलिस आ गई। हाथ मे डडे और कंधे पर राइफल। दस सिपाही और हैड-कांस्टेबल आये हैं। कुछ देवालय पर बैठे बीड़ी पी रहे हैं, कुछ गांव के चक्कर लगा रहे हैं। गलियों मे कुत्तो ने भौक-भौक कर कुहराम मचा रखा है। हेड-कास्टेबल प्रधान जी की बैठक मे सो रहा है। दिन निकले ही पूरी बोतल चढ़ा गया है।

बाबूलाल अंदर कमरे मे बैठा चैंटू को समझा रहा है—अब धीरज से काम लेना। पुलिस का मामला है। कही कुछ गडबड हो गई तो सब करा-धरा बेकार हो जायेगा। प्रधान यही चाहता है कि हम उसे गाली-...लोज दें, मारने-पीटने की धमकी दें, जिससे पुलिस उसकी रक्षा करे। ...म ध्यान रखना। अपने लोगो को पहले ही समझा देना। तेल चुपडी ...ाठिया अभी साथ न लायें, उसका मौका अभी नही आया है। इस ...ायत मे जितना हो सके धीरे-धीरे यह बताना है कि "प्रधान गाव मे कोई ...म नही होने देना चाहता है। हम जिस काम को ऊपर से पास कराकर ... हैं, उसमें यह टाग अड़ाता है, यही वजह है कि अब तक इतने बड़े ...मे कुछ भी सुविधा नही है।" बाबूलाल धीरे-धीरे चैंटू को समझाता

रहा। वह कमरे में धुआं घुमड़ रहा है।

चैटू के चेहरे पर निराशा चमक उठी। उसकी समझ में नहीं आया कि बाबूलाल ने इतनी जल्दी हार कैसे मान ली। वह तो आज की पंचायत में प्रधान को नंगा करना चाहता था। सब कुछ असलियत बताना चाहता था। इतने दिनों में रात-दिन भाग-दौड़कर बातें मालूम की हैं, गवाह बनाये हैं। जिसने पचास रुपये भी दिये हैं, चैटू ने उससे पाँच सौ रुपये बताने को कहा है। उसने यह वायदा किया है कि एक-एक पाई का हिसाब करवा कर रहेगा। सब बेकार कर दिया बाबूलाल ने। सब पढ़ाई-लिखाई बेकार गई। अनपढ़ प्रधान से हार मान रहा है। उसने बाबूलाल को समझाया भी, लेकिन उसने चैटू की एक नहीं चलने दी। उठकर चला आया।

चैटू की चिंता है अब वह किस मुंह से समझाये। गांव में समझ की भी तो कमी है। एक बार जो समझ गये उसे बदलने को कहो तो गाली-गलौज। चैटू परेशान है। अब उसने तय कर लिया है, यह पंचायत जैसे-तैसे हो जाये, फिर वह प्रधान से मिलेगा। प्रधान चाहे कैसा भी हो, हेकड़ है। गांव में चाहे गालियां मिलें, लेकिन बाहर बहुत चलती है। लखनऊ-दिल्ली तक में पहुंचा है। जो काम वह चाहता है, कर दिखाता है। बाबूलाल डरपोक है। पढ़ा-लिखा है तो क्या। पढ़े-लिखे को कौन यहां मास्टरी करनी है, जिस तरह की राजनीति की जरूरत है, वह बाबूलाल के बस की बात नहीं है। चैटू ने अपनी भूल स्वीकार कर ली है।

प्रधान जी अपनी जीत पर उछल रहे है। मंगी मास्टर ने नया कुरता-धोती पहने है। टोपी भी लगाई है, आज तो। सुबह से ही दो सिपाहियों को साथ लेकर घूम रहा है। जहां बैठता है, थूक-थूककर ढेर लगा देता है। मिलिट्री वाले एक-एक बोतल के सौ-सौ रुपये मांग रहे हैं। मंगी परेशान है। प्रधान जो से इकट्ठे रुपये ले आया है। रुपये देते समय प्रधान जी ने कह दिया था कि कम ही पिलाना, कहीं ज्यादा पीकर खुद होश खो बैठें। रात को चक्कर देंगे। मंगी खुद समझदार है। स्थिति को दूर से ही भाप लेता है। बचपन से ही प्रधान जी की सोहबत में रहा है।

पंचायत शुरू होने से पहले ही पछाईं थोक के चार लड़के पकड़ लिये—

घर से देसी बदूकें निकली है। जमुनाई थोक में तलाशी ली तो सिवाय बल्लम-फरसो के कुछ नही मिला। बल्लम-फरसे पुलिस ने अपने कब्जे में कर लिये। जमुनाई थोक से मगी मास्टर ने एक भी आदमी को गिरफ्तार नही होने दिया। उसकी अपनी राजनीति है।

पचायत शुरू हुई। चैंटू सबसे आगे बैठा है। फरसी की नय में मुह उठा ही नही रहा है। जरा-सा होठ ऊपर कर धुआ निकाल देता है। सामने रामसिह और बाबूलाल बैठे हैं। बड़े-बूढ़े कम ही हैं। ज्यादातर नये-नये लडके है। कुछ स्कूलों में पढ़ रहे हैं और कुछ की शादिया हो गई हैं, इसलिए पढाई छोड दी है।

रामसिह बोलने मे बाबूलाल से भी ज्यादा है। एक आख है। जब बाहर निकलता है, तब काला चश्मा लगा लेता है। बोलते समय मुह से झाग देता है। आकड़े खूब याद हैं। गाव की एक-एक घटना याद है। बोलते समय आवाज इतनी जोर से निकलती है कि रेडियो भी फीका पड जाता है। बाबूलाल से अच्छे सम्बन्ध नही हैं। लेकिन प्रधान जी से नाराज है, इसलिए ज्यादातर बाबूलाल के साथ रहता है।

इधर-उधर की बातो मे पचायत शुरू हुई। थोडी देर के बाद रामसिह बोलने खड़े हुए। पहले धीरे-धीरे बोलना शुरू किया और फिर जैसे ही रफ्तार पकड़ी, वैसे ही स्वर अपने आप बढ़ता गया। रामसिह ने प्रधान की एक-एक बेईमानी का उल्लेख किया। नाले पर पुल न बनने का कारण भी उन्होंने ही बताया। मगी मास्टर के पास बैठे पिल्लू ने जैसे ही बीच में बोलना शुरू किया, वैसे ही उसे डाट-डपटकर बिठाने की कोशिश हुई। पिल्लू अकड गया। तब बाबूलाल ने भी हस्तक्षेप किया। बाबूलाल ने क्या कहा—कुछ सुनाई नही पडा। जिसे देखो वही बोल रहा है। पचायत रावण-मेला हो गई है। जब सब बोल रहे हो, तब दूसरे से बैठने और चुप रहने को कौन कहे? बहुत देर तक हो-हल्ला होता रहा। कोई किसी से कम नही था। सबकी अपनी-अपनी तैयारिया थी।

चैंटू पर चुप नही रहा गया। उसने खडे होकर गालिया देनी शुरू कर दी। चैंटू गालिया किसे दे रहा है—ऐसे माहौल में कौन सुने। मगी मास्टर ने आगे बढ़कर चैंटू का गला पकड लिया। चैंटू ने भी उसका गला

पकड़ लिया। पीछे से किसी ने धूल की गठरी उछाल दी। धूल का अम्बार। दिखना भी बंद हो गया। ऐसे में जो लात-घूंसे चले, किसी को नहीं मालूम, किसने किसको मारा?

पंद्रह आदमी पकड़े गये। बाबूलाल भी। रामसिंह भाग गया। घर भी नहीं मिला। चैंटू को ज्यादा चोटें आई हैं। मगी मास्टर का कुर्ता फाड़ दिया है। माथे पर पता नहीं क्या लगा कि चबूतरी-सी बन गई है। ज्यादातर बच गये। एकाध थप्पड़ खाकर ही भाग लिये।

पुलिस उन्हें थाने ले गई। चार आदमी रात में ही छूट आये। चैंटू भी आ गया है। थानेदार ने जेब भरकर रुपये लिये हैं। चैंटू ने तो इलाज भी नहीं कराया। थानेदार ने कह दिया, यदि इलाज कराओगे तो सुबह चालान कर दूंगा। चैंटू ने मना कर दिया है। बाकी आदमियों का सुबह चालान होगा। मगी मास्टर अपना डॉक्टरी मुआइना करा आया है। डॉक्टर ने रुपये लिये हैं, लाठियों की फर्जी चोट लिखी है।

पुल की चर्चा ही गायब हो गई। सांवलिया की दुकान पर बाबूलाल की चर्चा रहती है—कैसे जेल में पड़ा है। थानेदार ने मां-बहिन की गालियां दीं और दो-चार थप्पड़ भी जड़ दिये। मगी मास्टर ने जान से मार डालने की रिपोर्ट दर्ज की है—बाबूलाल और उसके साथियों पर। सारा पैसा प्रधान जी खर्च करेंगे—ऐसी चर्चा है।

चैंटू अब प्रधान जी का आदमी बन गया है। बाबूलाल के खिलाफ पक्की गवाही देगा। उसकी अब एक ही इच्छा है कि बाबूलाल से जेल में चक्की पिसा कर रहेगा—जैसे भी हो। पुल भाड़ में जाये, जिंदगी-भर न बने, उसे क्या!

रावण-टोला

रामलीला समाप्त होने मे अभी पाच दिन बाकी थे। शहर मे पढने वाले लडके भी रामलीला का बहाना लगाकर गांव मे ऐश कर रहे थे। लाल छीट की साडी जैसे तहमद की फैशन चल पड़ी थी—इस बार गाव मे। बाल भी बाजने के मोहन-कट नही, कहते थे, 'बस एक ही नाई है अलीगढ मे, जो ऐसे बाल काटता है। और मालूम है—तीन रुपया लेता है—मशीन छुआने भर के। तीन से कम में तो बात भी नही करता।' टेढ़ा बहुत खुश है। अब तक तो गाव का हर आदमी डोरा बांधकर छंटवाता था—बहुत देर लगती थी। और अब नीचे-नीचे चार-छः कैंची मारी और बन गये बाल। ऐसे तो वह दिन मे हजारों के बाल बना सकता है। उसने बहुत जल्दी सीख ली—यह अंग्रेजी-कट। सीखते वक्त उसके मन मे सबसे अधिक होस इस बात की थी कि—तीन नही एक रुपया तो नकद मिलेगा ही। मगर सब कातिक-बैसाख के हिसाब में ही गये। टेढ़ा दुखी है कि शहर के नाई को तीन रुपये नकद देंगे और मेहमान की तरह बातें करेंगे और गाव के टहलुआ को देने के नाम प्राण निकलते है। खादर मे भैंस-गाय चराने वाले लडको के बालों के डीयर भी खत्म हो गये—रोज धोते हैं, डबल-शेर साबुन से। ऊपर से हप्पू तेली का असली सरसो का तेल। साल मे एक ही महीना तो बालो के अच्छे दिन होते है, वरना पूरी साल साबुन-तेल तो दूर, मोढना भी मुश्किल हो जाता है। इस बार माग बगल मे नही, बीच से निकालने की फैशन चली थी।

पूरे की पानों की बिक्री—बस पौवारे पच्चीस थे। होश नही पडता था, पूरे को। एकाध बीडी-पीवा दोस्त और बैठ जाते दुकान पर। बैठे

करें क्या तो उंगली से कत्था-चूना चुपड़कर सुपारी और लौंग ऊपर से रखकर पान लगाते रहते। कितना कत्था, कितना चूना—यह तो घूरे को भी आज तक मालूम नहीं और तो तब जानें। जिन्होंने सिवाय चौपाल की चिलम के बीड़ी भी नहीं पी—साल-भर तक, वह अब पनामा सिगरेट से नीचे तो बात ही नहीं करते। पीते क्या हैं टूट पड़ते हैं। दोनों उंगलियों में दबा ऐसे घूंट मारते, मानों सिगरेट न होकर अजमेरी की चरस की सुलप्पाई हो। दो-तीन कशों में सिगरेट का मलीदा निकाल देते।

हरस्वरूप की बूरे की मिठाई खूब बिक रही थी। चम्पा पुजारिन रोज सुबह उठकर कम-से-कम हजार गालियां देती और सारे गांव का चबूतरा बांधने का भगवान से हाहाकार-स्वर में निवेदन करती। उसके घेर में पथे कंडे रोज फूट जाते—सुबह दिखायी देते बस फूटे कंडे और पेड़ों के खाली थैले। जिन लड़कियों को कभी गुड़ भी नसीब नहीं हुआ, वे भी अब पाव-भर पेड़ों से नीचे तो बात ही नहीं करतीं। और पान—अरे, बगैर पान के भी मुहब्बत होती है कहीं। पुजारिन का फूटा घेर भी पवित्र हो जाता है—साल में एक-बार तो। कंडे तो कंडे, बिटौरी के अन्दर भी थैलों के ढेर पाते। चम्पा अब इस गांव को गांव न मानकर रंडियों का मुहल्ला मानती है। और हर जवान लड़की को घोर नरक में जाने का हुक्म देती, ताकि यह गांव बच सके।

रामलीला में रोज लट्ठ तनते। समझौता भी आनन-फानन में ही हो जाता। चूंकि समझौता न होने से इन्हें ही नुकसान था—एक दिन बेकार जाता। बड़ी परेशानियों के बाद तो रामलीला होती—साल में एक बार, और उसमें भी एक दिन खाली। यही सोचकर निकली हुई लाठियां धरी रह जातीं। सूर्पनखा की नाक कटने वाले दिन लोग उसकी कटी नाक और ऐक्टिंग को देखकर हंस रहे थे और सूर्पनखा चारों ओर गेरू की बौछार कर रही थी—हाय रे! मेरी नाक कट गयी रे रावण भैया! और पाख्आ ने मौके का लाभ उठाकर सामने पेड़ा फेंक दिया। लड़की तो मुस्करा दी, लेकिन पास ही खड़े हरिया पंडित ने इसका जबर्दस्त विरोध किया और नौबत यहां तक आ गई कि पाख्आ का सिर अब कुछ ही क्षणों में तरबूजा होने जा रहा था। इसी बीच उसने झटपट निर्णय लिया और

हरिया को एकांत में ले जाकर पनामा पिलाई, पान खिलाया और थोड़ी देर बाद विटौरे में घुस गये—दोनों। बन्नी जाट की लड़की पेडे का स्वाद लेती हुई पेशाब करने आ गई।

पेडों की ऐसी बौछार शायद ही कहीं होती हो, जितनी रामलीला में। रामलीला कहां चल रही है, इस फिजूल विषय पर सोचना बुजुर्गों का काम है, लडकों का मन तो सामने ही रहता—चाहे सीता-हरण हो, चाहे लक्ष्मण को शक्ति लगे।

आखों की भी आफत-सी आ जाती है—उन दिनों। सरसों के तेल की बत्ती से पारे पर उतरी कालौंच से आखें रोजाना रगी जाती। यदि कोई भूल भी जाता जल्दी-जल्दी में तो दुबारा भागकर जाता और आंखें रगकर आता—चाहे जल्दी में आखों के साथ-साथ मुह ही निशाचरों जैसा क्यों न हो जाय। सबकी आंखें दीये वाली दीवाल की तरह हो गई हैं—काली-काली।

ले-देकर सारे गांव में दो ही कुआं हैं इसलिए भीड़ लगी रहती है नहाने-धोने वालों की। कुएं पर साबुन लगाना मना है। अत. पास के ही तालाब में सारे गाव के मैल का साबुन भर रहा है। डबल-शेर साबुन की इतनी खपत इसी महीने में होती, वरना पूरे साल मक्खियों के हंगने से ऊपर के शेर भी अदृश्य हो जाते।

हरिजनों के दो मुहल्ले हैं और दोनों ही गाव से बाहर। एक उत्तर की ओर, दूसरा दक्षिण की ओर। दोनों के पास पोखरे हैं, जिनमें वहां के लड़के कपडों पर डबल शेर साबुन घिसते रहते हैं। दक्षिण वाला मुहल्ला वाल्मीकियों का है और उत्तर वाला जाटवों का। दक्षिण वालों को गाव के सवर्ण रावण-टोला कहते हैं। इसका कारण इतना-सा है कि इसी मुहल्ले का सरपतिया रावण बनाने में सिद्धहस्त है। आस-पास के बारह गावों में कहीं भी रामलीला हो, रावण सरपतिया ही बनाता। सरपतिया का रावण देखने बारह गाव तो क्या बाहर के लोग भी आते। उसके रावण में कोई-न-कोई विशेषता अवश्य होती। विशेषता न होती तो सुरीर का रावण ब्यापार क्यों ठप्प पड़ता!

इस बार सरपतिया को पता नहीं क्या सनक सवार हुई कि उसने रावण

बनाने को साफ मना कर दिया। दो मन बाजरे में अब रावण नहीं बना सकता वह। पता है कितनी तेजी हो गई है हर चीज पर। दो मन बाजरे में तो आतिशबाजी भी नहीं आ सकती, कागज और मेहनत तो दूर। और ऊपर से वही धौंस की घूरगोला चालीस से कम न हो, सरपतिया! सरपतिया क्या अपनी झोपड़ी बेच दे रावण के लिए। इतने बड़े-बड़े पेट वाले हैं गांव में, लेकिन देने के नाम पर प्राण निकलते हैं सबके। वैसे रामलीला में ऐसे बन-ठनकर आगे बैठते हैं—मानो रामलीला न होकर इनके बेटे की शादी का जनवासा हो। और तब सरपतिया चबूतरे पर रुपया भी देने आ जाए तो पचास गालियां। बैठे रहो चन्ना के चढ़ाये पर इतनी दूर। स्वरूपों के चेहरे भी साफ दिखाई नहीं पड़ते। इस बार रावण बनवाना है, तो पांच मन बाजरा लूंगा। अपनी मेहनत को क्यों छोड़ू, जब रम्मी बनिया ही नहीं छोड़ता तो। रम्मी बनिया वैसे हर साल हजारों डकार जाये और मच पर ऐसे गद्गद होकर नारे लगता है, जय-जयकार करता है, पोपले मुंह में बिना सुपारी का पान रखकर, जैसे शंकराचार्य हो। जिंदगी-भर गले काटता रहा और अब चला है—शंकराचार्य की ऐसी-तैसी करने। सब साले खाऊ-पीर हैं। जो जितना बड़ा भगत है, वह उतना ही बड़ा बेईमान। रामलीला मण्डली क्या है, बूढ़े बेईमानों की कुच्चई है—सरपतिया हरेक को जानता है, तह से और हमसे कहते हैं कि रामलीला···। हमारे लिए रामलीला और रावणलीला दोनों ही बराबर हैं। राम तुम्हारे होंगे, हमारे लिए तो जो रोटी देता है वह देवता है।

रामलीला मण्डली इस विषय को लेकर बेहद चिंतित है। सरपतिया के लाख निहोरे किये हैं, सबने, लेकिन वह कहां मानने वाला। रात बाबूजी ने भी बातें की थीं कि—

'गांव का मामला है, इसमें नुकसान-फायदा नहीं देखा जाता। और भगवान के नाम पर तो जितना दे सको, उतना ही कम है, यह तो पुण्य का काम है।'

सरपतिया पर इसका कतई असर नहीं हुआ। रावण तैयार होते न देख खज्जी की जोकरी का काम कुछ ज्यादा बढ़ गया है, हँसने-हँसाने में एक घंटा गुजार देता है वह और रामलीला एक-एक दिन करके रोज खिंच

रही है। लड़के अत्यधिक प्रसन्न हैं। सरपतिया को आशीर्वाद दे रहे हैं मन-ही-मन।

एक दिन सुबह से ही नारायण बाबूजी के चबूतरे पर शाम तक पंचायत ठुकी। सारा गांव इकट्ठा था—हरिजन, जाटव और खटीक मुहल्ले के लोगों को छोड़कर। नाई वैसे ही अलग रहते हैं, जवान बम्बई में कमा रहे हैं और बूढ़े खाटों में पड़े हुक्का गुड़गुड़ा रहे हैं। गांव की राजनीति उन्हें इद्रासन है। पचायत कहीं भी हो जाट ही अधिक आते हैं। जाटों के लिए पचायत का महत्व फ्री का हुक्का है। यहां भी वैसा ही है। आगे गांव के सम्भ्रांत नागरिक हैं, और पीछे ठलुवा लोग। पीछे वाले रामलीला के विषय को छोड़कर हुक्के से दुश्मनी निकाल रहे हैं। चिलम भरकर आयी नहीं, कि लपक लिया बीच में ही। आगे वालों को अभी तक एक चिलम भी पूरी नहीं मिली। गीले कंडों का धुआं पीछे छा गया है। नाक रगड़ते-रगड़ते लाल हो गई है, धोती का एक छोर पोंछते-पोंछते भीग गया है। पचायत में क्या हो रहा है, हुक्के की गुड़गुड़ाहट और चबूतरे के नीचे बच्चों की चिल्ल-पों के कारण कुछ सुनायी ही नहीं पड़ रहा।

शाम को आरती के वक्त तक प्रस्ताव पास हो गया और सरपतिया से साफ-साफ कह दिया गया कि यदि उसने रावण न बनाया तो, तो उसे और उसके मुहल्ले के किसी भी सदस्य को खेत की मेंड पर पांव न रखने दिया जावेगा—अन्दर से हरा लेना तो दूर। सरपतिया के मुहल्ले को सांप-सा सूंघ गया है। करें तो क्या करें—कोई उपाय नजर नहीं आ रहा। दो मन बाजरे में तो वाकई अन्याय है, इन बेचारे का भी तो पेट है। और उन पर भी इतना पैसा नहीं कि सरपतिया की मदद ही कर सकें। इस साल कुछ पैसा कमाया भी, सड़क बनाते समय, तो यह भी अब ठिकाने लग गया। किसी ने धीरे-धीरे बूढ़ी होती लड़की की शादी कर दी तो किसी ने बहन की और किसी ने टूटी झोंपड़ी पर छान डाल ली। और फिर रह गये वैसे के वैसे ही—नंग फकीर।

हारकर रम्मी बनिया के साथ दो-चार आदमी गुगीर गये। सुना है वहां का सोना बड़ेरा भी रावण बना लेता है। सरपतिया जैसा तो नहीं, पर काम तो निकाल ही देता है। बड़ी आशा लेकर सोना ने समस्त आशाओं

पर पानी फेर दिया—सात मन बाजरे की कहकर—सात मन में भी ऊंचाई छ: फीट और पच्चीस घूरगोले। जबकि सरपतिया दस फीट ऊंचा बनाकर चालीस घूरगोले लगाता था। वापिस लौट आये, उतरा-सा मुंह लेकर।

रात को फिर पचायत हुई, लेकिन कोई भी चंदा देने को तैयार नहीं हुआ। बाबूजी के मुंह की बनावट पिटे बराती-सी हो गई। बार-बार के कहने पर वही घिसा-पिटा-सा जवाब मिलता—घरे हैं रुपये जो मिल जायेंगे, यहां पेटों के तो लाले पड़ रहे हैं, वहा रावण फूकने को चंदा चाहिए। भाड़ में जाये रावण और ऊपर से पंच। गांव में रुपये किसी पर भी नहीं। बाबूजी समझ गये, वास्तव में रुपये कहां है? रुपये होते तो गांव की यह स्थिति होती। चारों ओर गरीबी का ताण्डव-नृत्य। इसलिए बाबूजी ने सरल सा उपाय निकाला। सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। बाबूजी हाईस्कूल-फेल हैं, पुराने जमाने के। अंग्रेजी का कागज आज भी बाबूजी ही पढ़ते हैं। गांव के सारे पढ़े-लिखे नौजवान शहर में भाग गये, इसलिए बाबूजी की आज भी इज्जत वैसी ही है, जैसे पहले थी। बाबूजी ने निर्णय लिया कि भारत जैसे गरीब देश में रावण पर इतना पैसा खर्च करके उसे जलाना वाकई गद्दारी है, अन्याय है। अत: इस वर्ष यह मेला सादगी से मनाया जायेगा। आगे बैठे लोगों ने बाबूजी की बुद्धि की दाद दी और पीछे वाले आगे वालों के सिर हिलते देखकर खुश हो गये। चलते-चलते हुक्के में कसकर एक घूंट मारी। मारे खांसी के परेशान हो गये। खांसी के वैशिष्ट्य को देखकर बाबूजी का पालतू कुत्ता भौंकते-भौंकते पगला गया।

रामलीला समाप्त हो गई। मन्दिर पर टंगे पर्दे धीरे-धीरे हट गये। बांस-बल्ली रात में किसी ने पार कर दी। बहुत-सों की जलेबी खाने-खिलाने की आशाओं पर सरपतिया ने पानी फेर दिया। हरस्वरूप की खांड़ और मैदा की बोरी धरी रह गई—धीरे-धीरे नीचे से चूहों ने छेदकर दिए हैं। परेशान है हरस्वरूप हलवाई। चम्पा ने ढेर सारे कंडे थापकर घेर भर दिया है—अब कंडे भी निरापद हैं और चम्पा भी।

रावण-टोले के सूअर परेशान है। पाव भी फरैरे नहीं कर सकते। पोखरे के आस-पास पड़ी गन्दगी ही भोज्य-पदार्थ रह गई है। औरतें अंधेरे

ही टट्टी फिर आती हैं, पोखरे के किनारे। खेतों वाले चिकनी तार ठुकी लाठिया लेकर रात-दिन पहरा-सा दे रहे है। मिल जाये कही कोई खेत और खेत के आस-पास, दिला दें छठी तक की याद। रावण-टोला जेल-सा बन गया है। गांव बदले की आग मे जल रहा है।

अभी-अभी अफवाह उड़ी है कि रावण-टोला मे खैर की पैंठ से लाठियां आई हैं और साथ मे ''। नारायण बाबूजी रात-दिन अफवाहों का खंडन कर रहे हैं।

रम्मी बनिया के यहा पुलिस चौकी खुल रही है। हो सकता है—यह अफवाह ही हो, लेकिन सुना है—नारायण बाबूजी कह रहे थे। पता नही, बाबूजी क्यो कह रहे थे।

रावण-टोला बदला लेने को तैयार है। कब तक ऐसे दबकर रहेंगे? जो होगा वह एक बार हो लेने दो—देखा जायेगा!

निर्णय

बिशन बहुत दिनों बाद आया है। चेहरे पर कुछ-कुछ प्रौढ़ता आ गयी है। आंखों पर चश्मा, सिर के बीचोंबीच गजाती चाद। कई वर्ष पहले का उद्दंड बिशन, विश्वविद्यालय की चप्पा-चप्पा भूमि का प्यारा बिशन! वक्त भी क्या चीज है, किस तरह आदमी को खोखला कर देता है। अन्दर से खाली आदमी कुछ भी तो नहीं कर सकता, लाख चाह करके भी। पतला छरहरा शरीर अब तोंदू बन गया है। ऐसा क्यों हो गया है—वह? लगातार सिगरेट। तब तो वह छूता भी नहीं था। पूछने पर बाईं आंख को छोटा करके हँसता हुआ कहता, तुम लड़कियों को पसन्द जो नहीं है। और जो तुम्हें पसन्द न हो वह मैं करूं—यह कैसे हो सकता है? और फिर उसकी हँसी फट पड़ती थी—एकाएक, कैनेडी-हाल पूरा गूंज उठता था। हवा में गूंजती हँसी, दीवारों से टकरा कर वापस आ जाती, कितना अच्छा लगता था! कितना मोहक! मन करता—वह ऐसे ही हँसता रहे—अनवरत। मैं अन्दर तक गुदगुदा जाती। बिशन चुपचाप माथे पर चुम्बन जड़ देता—सिहर-सी उठती मैं। मन आनन्द के महासागर में हँसता-गुनगुनाता तैरता रहता।

वह दिन, प्यारे दिन, जिनके चुक जाने की हम कल्पना भी नहीं कर सकते, कहां हैं अब? अब हम दोनों हाथों से पकड़ने की कोशिश भी करें; तब भी नहीं। प्यार शायद वक्त है, जो निकल जाने के बाद दुबारा हाथ नहीं आता। और आता भी है तो उस रूप, गंध और आत्मीयता के साथ नहीं, जिसे हम देखने के आदी हैं। जो हमारा था, सिर्फ हमारा, वह पराया-सा लगने लगता है—अपनी आंखों के सामने ही।

कहां से आ रहे हैं—आप ! बिशन के बाहर बरामदे में बैठने के बाद यह मेरा पहला प्रश्न था। बहुत संभलकर बोली थी मैं। आते ही ड्राइंग-रूम में बैठने से मना करते हुए बिशन ने कहा था—"बन्द जगह पर मेरा दम घुटता है—अब।" इतना ही कह पाया था वह कि मैं अन्दर तक कांप उठी थी। इतना कमजोर तो वह कभी भी नहीं था। सीधी बाहर बरामदे में ले आयी। वह पास लगी कुर्सी पर बैठ गया था और मैं तख्त पर।

कानपुर से।

एक छोटा-सा उत्तर दिया था उसने, सिगरेट का धुआं छोड़ते हुए। ऐसा लगा जैसे वह सिर्फ औपचारिकता निबाह रहा था। लेकिन जब औपचारिकता ही निभानी थी, तो आया क्यों? बीच में कई वर्षों से टूटी यादों की टहनी एकाएक हरी हो गयी, ऐसा करने की आवश्यकता क्या थी? मैं सोच नहीं पा रही थी। अब क्या पूछूं? क्या औपचारिकता के संदर्भ में ही पूछूं, कहीं बुरा तो नहीं मान जायेगा। बुरा मानेगा तो? अब उस पर अधिकार भी तो नहीं है। पहले ऐसा होता तो कनपकड़ी हो जाती थी—आपस में। हम दोनों में यह तय था, यदि एक दूसरे से कोई नाराज हो जाये तो कनपकड़ी होगी और वह जब तक होगी, तब तक सुलह-सफाई नहीं हो जाती। लेकिन वह अनुबंध, वह शपथ और वह सहज-बंधन अब कहां है? घर आये मेहमान को नाराज भी तो नहीं किया जा सकता। बिशन कौन-सा मेहमान है। जिसके साथ कई वर्ष अपने, सिर्फ अपनेपन के सम्बन्ध रहे—वह मेहमान क्या इसीलिए हो गया कि बहुत दिनों से मिलना-जुलना नहीं हो पाया। मिलना-जुलना सम्बन्धों में प्रगाढ़ता लाता है लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आत्मीयता अनात्मीयता में बदल जाए।

आप इतने औपचारिक-से क्यों हो रहे हैं? अचानक प्रश्न मेरे मुंह से तीर की तरह छूट गया। इतनी देर सोचना-विचारना बेकार गया। प्रश्न निकलने के बाद मैं पश्चाताप में डूबी बिशन के चेहरे की ओर देखने लगी एकटक।

आप ही कौन अनौपचारिक हो रही हैं। जब आत्मीय सम्बोधन ही

पराये हो जाये, तब ? विशन ने इतने हौले और उदास स्वर मे कहा कि सुनकर मैं विचलित हो उठी।

विशन का कहना भी सही है, हम आपस मे इतने औपचारिक पहली बार हुए है। मैं कह नही सकती, नही बता सकती इसका कोई कारण। बहुत-सी बातें ऐसी भी होती है जो अपना होना न होना स्वयं पर निर्भर करती है—अर्थवान्, लेकिन अर्थहीन भी। मैं धीरे-धीरे भावुक होती गयी। विशन को देखकर मैं भावुक होना नही चाहती, हो जाती हू। बहुत कोशिश करती हू—भावुक नही होऊ तो अच्छा है। निखिल आ रहे होंगे—उन्हें कुछ मालूम नही पडना चाहिए—कुछ भी नही। निखिल भी तो शुद्ध भारतीय पति है—एकदम शक्की और अपने पुरुष होने के अह मे सराबोर। औरत के लिए शक तो रौरव-नरक से भी बढकर है, एक बार पड़ने के बाद निकलना ही असभव। इसीलिए अपनी समस्त शक्ति के साथ चेतना को बरकरार रखे हुए हू—कही ऐसा-वैसा न हो जाये।

'शादी कर लो ?'—पूछते हुए एक अजीब से अपराध-भाव ने मुझे अचानक आ दबोचा। बहुत कोशिश के बाद भी मैं उससे मुक्त नही हो पाई। समझ मे नही आया, ऐसा हो क्यों रहा है। इसमे ऐसी कौन-सी बात है जिसके कारण अपराध-बोध की पकड मजबूत और मजबूत होती जा रही है। मैं घबरा-सी उठी। चेहरा लाल सुर्ख, पसीने से तर-बतर, सास तेज। मैं असयत-सी हो उठी। अतीत का शात ज्वालामुखी अन्तर मे दहक उठा।

अपने ही प्रश्न को अधूरा छोड अन्दर चली गयी। पलग पर लेट गयी। कही कोई आराम नही। शरीर मृतप्राय हो गया। कई बार मुट्ठिया खोलीं, बद की, हाथ-पैर चलाये—कुछ अजीब-सा लगता रहा। भयकर सर्दी मे गर्मी, जैसे चूल्हे के पास बैठ पचास आदमियों का खाना बनाया हो। उठने की कोशिश की, उठा नही गया। सिर पकड़कर पलग की पीठ के सहारे बैठ गयी। घबराहट और बढ गयी। ऐसा लगा, अब बचना मुश्किल है—अनायास एक डरी-सी चीख निकलकर बरामदे में छाये कुहरे मे खो गयी। विशन हडबडा-से गये। सारी चुप्पी और गंभीरता जो शुद्ध औपचारिकता के खोल मे बन्द होते हुए भी आक्रामक हो रही थी—अनावृत हो उठी।

बिशन भागे आये। बोले कुछ नही—दोनों कधों को मजबूती से पकड़कर लिटा दिया था, पलग पर। वक्ष पर रखे दोनों हाथ उठाकर पैरो के बराबर में लम्बे कर दिये थे। सिर उठाकर नीचे तकिया लगा दिया था। सिर पर अपना हाथ फेरते हुए कहा—क्यो, क्या हो गया अचानक, अभी-अभी तो ठीक थी—शकुन। हाथ माथे से नीचे आ गया था बिशन का आत्मीय और अपना हाथ, मुद्दतो बाद। बिशन बार-बार पूछते रहे, बार-बार। मैंने बहुत कोशिश की—बताने की, लेकिन आवाज निकलते न बनी। जीभ पथरा-सी गयी थी। मैं कुछ नही बोल पाई। आखें बह चली। अन्दर जलता ज्वालामुखी अचानक पिघल-सा गया।

हौले-हौले चलते बिशन के हाथ। फूल से झड़ते बोल, अद्भुत अपनत्व की भीनी गंध और पता नहीं क्या-क्या दिया था बिशन ने इन क्षणो मे। मैं तृप्त हो उठी। धीरे-धीरे आखें खुली—उसकी दोनो बड़ी-बड़ी आखों में डूब गई। आखें डूबती-उतरती रही और साथ मे मैं भी जैसे कोई राजस्थान का आदमी गंगा स्नान कर आनन्द अनुभव करता है—वैसा ही मुझे हो रहा था। मन करता बिशन ऐसे ही बैठा रहे। ऐसे ही देखता रहे बगैर पलक झपकाये। हर क्षण आनन्द मे डूबा और स्वर्णिम अतीत से सना लग रहा था। आंखें अपने आप धीरे-धीरे झपकने लगीं। खोलने की कोशिश की, लेकिन बार-बार असफल प्रयास। ऐसा लग रहा था, मानो जब से बिशन बिछुड़ा है तब से नीद ही नही आयी है। और अब वह मिला है तो सो लेने को मन तरस रहा है। बन्द आखों मे बिशन का हँसता-खिलखिलाता वही पुराना चित्र तरह-तरह की हलचल मचा रहा है। भगवान से लाख-लाख मनौतिया माग रही हू कि निखिल अभी नही आयें। वे आते ही सब-कुछ रौंद डालेंगे, तहस-नहस कर डालेंगे मेरे इन अद्भुत पलों को। निखिल को क्या मालूम, जिंदगी ऐसे ही कुछ पलो के लिए याद की जाती है। वरना उसमे रह ही क्या जाता है। एक बधी-बधायी जिंदगी, ऊब और सन्नाटे मे लिपटी हुई। रोज-रोज वही दिनचर्या-कुछ भी तो परिवर्तन नही, कुछ भी अपना नही। सब-कुछ बेगाना। मानो, जिंदगी, जिंदगी नही कोल्हू है और हम सब कोल्हू के बैल, जब चाहा, तब उठाकर बाध दिया आखो पर पट्टी बांधकर चल निकले। डंडा खाते रहे। तेल और खल तो

कोई दूसरा ले जाता रहा और हम चलते रहे, मानों हमारी नियति यही है।

एक पल को रुक-सी गयी, जैसे बिजली के नंगे तार पर हाथ रखते बच गया हो। नियति से विशन को बहुत चिढ थी, तब। वह कहा करता था—ये हमारे धर्म-ग्रन्थ हैं न, इन्होंने आदमी को आत्मविश्वासहीन और जड बना दिया है। कर्म करिये, फल ईश्वर देगा। अर्थात् कोल्हू का बैल बने रहिये।

एम० ए० में कामायनी पढाने वाले डॉ० रस्तोगी जब आनन्दवाद, नियतिवाद और ईश्वरवाद की दुहाई में वेद, पुराण और रामचरित् के कई-कई उद्धरण सुना जाते तो—विशन हौले से कहता, देखा, है लटकियो से भी ज्यादा रटने का अभ्यास। ये तोते हैं, पिछले जन्म के। जैसा रटा दिया, रट लिया—मौलिक चिंतन और उसकी सभावनाओ से इनका क्या लेना-देना। विशन की नयी थ्योरी सुनकर मैं खिलखिला जाती थी। बहुत रोकने के बाद डॉ० रस्तोगी की आखें उठ पडती। मैं गर्दन झुकाकर मासूम-सी बैठ जाती। तोता। अचानक मेरे मुह से निकल पडता।

आखें अपने आप खुल गयी। मैं उठ बैठी। विशन मेरे पास पलंग पर ही बैठा रहा—कुछ-कुछ बोलती-सी आखो से देखता हुआ। मैं सब-कुछ भूल गयी थी—निखिल के आने का समय और सब-कुछ। विशन मेरी आत्मा मे समा गया था—सुगध की तरह। बहुत दिनों के बाद मैं इस तरह महक उठी थी। हाथ अनायास बढकर विशन के हाथो से जा टकराया। मैं रोक नही सकी। इतनी हिम्मत और शक्ति भी मेरे मे नही रही। मानो, मन की लगाम विशन के हाथो मे हो। वही दौडा रहा था—और मन था कि दौड रहा था। अनथक। हाथो की पकड और गहरा गई—विशन की दोनो हथेलिया उठाकर दोनो हथेलियो मे जकडकर मुह के पास ले गयी—एक अद्भुत गध। गध से नहा उटी। पहली महक। सदियों के बाद मिली महक। अपनी चिरपरिचित महक। क्या नही था उसमे? सब-कुछ था। वह जो जिंदगी की एकमात्र इच्छा होती है—डूबने-उतराने की। दुनिया से एकदम अलग-थलग। वही महक मेरी महक मेरी हथेलियो में बन्द है। मजबूती से जकडी हथेलियों में। विशन के सयम का बाध अब टूट चुका था। उसने हथेलिया छुडा, मुझे दोनो बाहो में कस लिया था।

सासें एकाएक बढ़ गयी थी। वद आंखों में अपना पुराना अपनापन प्रतिविम्बित हो उठा। बहुत दिनों बाद। विशन कैनेडी हाल के पीछे बैठ मन चाहे तब यह शरारत कर बैठता था। तब मैं झूठमूठ की नकली क्रोध में छटपटाती, मना करती, शायद को देख लेगा। विशन तपाक से कहता—देखकर कर क्या लेगा और यहां है भी कौन? म्यूजिक के आगे और लाइब्रेरी के पीछे वाले लॉन में लड़कियों की मीठी हँसी गुनगुनाने लगती। लगता कोई आ रहा है। कौन आता और आता भी तो—मैं बद आंखों से क्या उसे देख पाती? विशन गर्दन, भाल, होंठों और गालों पर अनेकानेक चुम्बन जड़ देता। पकड़ और मजबूत होती चली जाती। नाक पर नाक रगड़ते विशन बहुत देर तक बुदबुदाता रहता। मेरा पूरा शरीर गुदगुदा जाता और बाद में छूटने पर कहती—एकदम जंगली हो—जगली। देखो मेरा शरीर दुख रहा है। वह कुछ नहीं बोलता, प्यासी-सी नजरों से घूरता रहता—बहुत देर तक।

आठ बज गये थे। सूरज कुहरे की अनन्त चादर को चीड़ता-फाड़ता आगे बढ़ रहा था। सामने लगे पेड़ों पर ओस की बूंदों से छनकता-आलोक। हवा की वजह से सर्दी बढ़ गयी थी। मैं उठकर किचिन में जा लगी। विशन चाय का कितना शौकीन था, कहता था—बगैर चाय के तो न जुबान चलती है और न दिमाग। सब ठस।' विशन को घर आते देखकर मां कह उठती, लो तुम्हारे चायधारीसिंह आ गये। विशन को मां का दिया यह नाम बहुत अच्छा लगता। वह खिलखिला पड़ता—चायधारीसिंह, कितना अच्छा नाम है। एकदम कलियुगी। पहले हुआ करते थे—गिरिधारी और अब'''। विशन ठठाकर हँस पड़ता। साथ में मां और मैं भी।

चाय बना लायी। विशन को चाय देते हुए कहा—लीजिए चायधारी-सिंह—पीजिये चाय। विशन मेरी ओर देखते हुए हँस दिया था। हौले से। मानो, उससे कहा जा रहा हो कि अब तुम्हें हँसना भर है। पहले जैसा अट्टहास नहीं।

चाय कम कर दी है क्या?

कुछ। लेकिन यहां खूब पीऊंगा। तुम्हारे हाथ की चाय और फिर वही शरारती हँसी।

 न दोनों अब एकदम अनौपचारिक हो गये थे। कई वर्ष पहले की जैसे किसी ने पकड़कर हमें फिर वहीं धकेल दिया हो। वही लम्बी-हँसी —छोटी-छोटी बातें। पुरानी यादों की गठरी खुल गयी हो

म्हें याद है न, वह रिहर्सल वाली बात! जब सर ने कहा था—नि-पत्नी का रोल करना है। तुम्हारी आँखें झपक गयी थीं—चेहरा गया था और तुमने वैसे न कर दिया था। मैंने हामी भर ली थी नी। सर देखते रह गये थे।

ा-हाँ। खूब याद है। वह भी याद है, जब सर ने हँसती हुई आँखों देखा था। लम्बे रिहर्सल के बीच कितनी शामें गुजरी थीं—वह खुश-ामें। अब कहाँ हैं। अब जिन्दा है तो सिर्फ उनकी याद, जो शूल की मेशा सालती रहेगी। नाटक के बाद दिये गये काम्प्लीमेण्ट्स। रास्ते कम्प्लीमेंट्स। विभाग की अफवाहें। डॉ० रहमान की कटुता और डा० रहमान डेढ़ फुटा शरीर, लेकिन समझता अपने को अमिताभ। की के पीछे दौड़ने वाला। पूरे विश्वविद्यालय में मशहूर। मुहल्ले की रिन से लेकर आस-पड़ोस की हर जवान लड़की से जुड़ा एक नाम-रहमान।' उसी ने शायद भैया से कहा था। तब भैया ने घर में मचा दिया था। पिताजी कहनी-अनकहनी सब कुछ कह गये थे—म में। सारा घर मेरे लिए हिकारत की नजर बन गया था। सिर्फ ली ऐसी थीं, जिन्होंने कभी विश्वास नहीं किया। माँ गलत थीं, तब मेरे लिए एकमात्र हितैषी, घर का आधार। भाभी को पता नहीं नन्द आता, वह लगातार भैया के कान भरती रहती। भैया और ा ने रात-दिन भाग-दौड़ करके निखिल को तलाशा था। पहली बार ने उससे ऊब-सी गयी थी। गोरा-चिट्टा रंग, गोल, मटोल शरीर निखिल मुझे बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगा था। लेकिन मेरे अच्छे और न लगने का अर्थ ही क्या था—निखिल को तो मैं रुच गयी अने अचानक घर आना बंदकर दिया था। बहुत बुरा लगा था——बहुत बुरा। जिबह होती बकरी की तरह मैं अकेली चीखती-ती रही थी। बंद कमरे में मन-ही-मन आँसू बहते रहते। तब सिर्फ

तरह।
लम्बी
जैसे।
तुम्हें प
सुर्ख हो
दोनों
से हमें
तुमा श
तरह
चलते
ईर्ष्या
हर लड़
जमाद
"डा०
कुहरा
एक स
मा अ
लेकिन
क्यों अ
पिताज
में ही
वाला
लगने
थी।
बिशन
चिल्ल

तुम्ही थे जो मेरे सहारे थे—लेकिन तुम वहा थे कहा ? पता नहीं, तुम इतने क्यो , डर गये थे। मैंने जिन्दगी मे पहली बार इतना डरपोक और स्वार्थी पाया था तुम्हें। मेरे सारे सकल्प तितर-बितर हो गये थे। मन मे एक घृणा की जगह बन गयी थी—बिशन के नाम पर। सब-कुछ याद है—बिशन। सब कुछ।

निखिल आने वाले होगे, अब तुम जाओ। मैं बेरुखे स्वर मे कहा। अभी कुछ देर बहने वाली गध, अनुपम महक, प्यार की निर्झरिणी—सब-कुछ सूख गयी और उसी जगह घृणा का वट-वृक्ष हरिया उठा था—एक साथ जड़ें फैलाता। बिशन शाम को पुन. आने की कहकर उठ गया था, धीरे धीरे मुस्कराता। एक बार चलते-चलते शरीर पर हाथ फिराया था, मैं प्रत्युत्तर में कुछ भी नही कह सकी। बिशन मेरे मनोभावो को शायद समझ नही सका था, अपना समझकर भी वह विपरीत प्रदर्शन करता रहा। मर्दों की यह विशेषता भी है कि वे अपने मनोभावों को चेहरे पर प्रकट नही होने देते और लडकिया चाहें कितना भी क्यो न छिपाये, भाव चेहरे पर आ ही जाते हैं। सीढ़ियों से उतरते हुए भी वह हाथ हिलाता रहा था—खुशियों से भरा हाथ।

बिशन के जाते ही मैं पुनः उदास-सी हो उठी। पता नही, वह ऐसा क्या रोप गया, कि काटे नही कटता। मैं न चाहकर भी अपने को असहाय-सा अनुभव करती। बिशन अतीत है—वर्तमान निखिल। सार्थकता वर्तमान से है न कि अतीत से। अतीत एक सीढ़ी है—वर्तमान तक पहुचने की। सीढ़िया चाहे कितनी ही सगमरमरी और मोहक क्यो न हो उन्हे पकडकर नहीं बैठा जा सकता। फिर उनके प्रति मोह क्यो और कैसा ? मानती हू, बिशन का साथ नयी जिन्दगी देना है—एक खुशनुमा जिन्दगी, लेकिन कब तक ? बिशन की एक सीमा है और निखिल सीमाहीन। बिशन का साथ सिर्फ कल्पना है और कल्पना कभी यथार्थ भी बन सकती है, क्या ! यद्यपि यथार्थ बेहद कटु और कर्कश होता है, लेकिन जिन्दगी तो यथार्थ ही है। फिर यथार्थ से कैसे मुह मोड़ा जा सकता है।

वह जाते समय कैसी बातें कर रहा था—शाम को आने का वायदा भी। शाम को आयेगा तब कैसे बातें होगी—मैं नही रोक पाऊंगी अपने

उच्छ्वासो को। निखिल के सामने निकले उच्छ्वास। निखिल वर्दाश्त नही कर सकता। और विशन गुमसुम वातावरण मे घुटता है। दोनो एक-दूसरे के विपरीत। विपरीत ध्रुव कहा मिलते हैं ?

बिशन अब भी वैसा ही चाहता है—पहले की तरह। पहले से भी अधिक। उम्र की लम्बी चढाई चढ लेने के बाद भी वह मेरा हाथ चाहता है—वह अकेला नही चल सकता अब। मैं भी कहा चल रही हू। घिसटना चलना थोडे ही होता है। दोषी मैं ही हू। बिशन का अपराध ही कहा है ! शादी के समय वह मेरा घर वालो द्वारा आरोपित कहा मान गया, ये क्या कम है। वरना कुछ भी कर सकता था, जिन्दगी बिगाड सकता था। कुछ भी नही किया उसने, सिर्फ इतना भर कहा था—मैं सदैव तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहूगा जब भी तुम असहाय और अकेली अनुभव करो—मेरा हाथ तैयार रहेगा। वह हाथ अब भी तैयार है, बिशन अब भी मेरा है, सिर्फ मेरा। लेकिन मैं कैसे कहू—बिशन, मैं असहाय और अकेली हू—फिर भी तुम्हारा हाथ नही पकड पा रही हू। एक बार तुमने आकर अपना हाथ पकडा दिया, मैंने मजबूती के साथ पकडा भी, लेकिन फिर छूट गया। वक्त ने मेरे हाथ बहुत छोटे कर दिए है—बिशन। अब नही पकड सकती, चाहे जिन्दगी भर घिसटती रहू।

मैं बौखला उठी थी। भयकर सर्दी में भी पसीने से तरबतर। मैं पलग पर मरी-सी पडी रही। निखिल आये, मैं पलग से उठ नही सकी—हिम्मत जो नही थी। निखिल का घुन्ना-मन। बोले कुछ नही। पास आकर कुर्सी पर बैठ गये। तबीयत को पूछा, बता दिया चक्कर आ रहे हैं। सुनकर कुछ नही कहा। नाराजी में वे कुछ भी नही बोल पाते। मैं अन्दर तक घुट-सी गई थी।

सुबह से शाम तक बेचैन उदासी। पल-पल रिसता मन। वर्तमान और अतीत का द्वन्द्व। सिर पर कच्ची सुतली में लिपटी भविष्य की तलवार। सब कुछ प्रत्यक्ष ही हाहाकार करते रहे। सब कुछ चुपचाप सहन करती रही। कह भी तो नही सकती। एक दारुण कष्ट मन में घुमडता तूफान। शाम होने से पहले ही मदिर निकल गये थे। चलते समय पैर डगमगा रहे थे।

थे। जैसे-तैसे करके मंदिर के एकांत कोने में आकर बैठ गये। कहीं विशन देख न ले।

अब विशन को समझ लेना चाहिए—मैं वह नहीं हूं जो पहले थी। बहुत फर्क आ गया है—बहुत बड़ा फर्क—समय और परिस्थितियों का। आंखों के आगे सब-कुछ मिटने लगा, तैरने लगा—भविष्य। स्वर्णिम और अनुपम। मंदिर के लगातार बजते घंटे और शंख चेतना को झकझोर गये। सुबह से पहली बार एक लम्बी सांस ली। मुक्ति के अहसास ने ठण्डी हवा में गंध घोल दी थी।

अपने लोग

बाबू शमशेरसिंह का सामान-भरा ट्रक दिन निकले से पहले जैसे ही हत्थीमान के पास से कच्ची गली में घुसा, आवाज सुनकर गाव मे जगार पड़ गई। लच्छी पहिल चारपाई पर लेट गये। झूठे को नीद का बहाना बनाकर। पिछली साल मोटर की आवाज सुनकर उठ बैठे थे, तब चलते समय डकैतों ने गोली मार दी थी, बड़ी मुश्किल से बचे थे। इसलिए अब गाव मे रात के वक्त कोई आये-जाये, बोलते ही नहीं। चाहे पूरी रात दमे के कारण खाट पर बैठे कट जाये, लेकिन दूर से किसी को देखकर चुपचाप लेट जाते है।

मीठे पानी के कुए के पास कच्चा-सा मकान। बड़ा-सा दरवाजा। लोहे का ताला भी जग खा गया है। बडी देर तक खटखटाने के बाद भी नहीं खुला। इस बीच आसपास से लोग इकट्ठे हो गये। औरतें पास ही चबूतरे पर खड़े होकर तमाशा देखती रहीं—जैसे राम की बारात देख रही हो, उत्सुकता के साथ।

ताले मे मिट्टी का तेल भी डाल दिया, फिर भी नही खुला। हारकर तोड़ना पड़ा। हट्टू सुनार के पास से हथौडा लाया गया। हिलता-सा दरवाजा खुला। दरवाजे के ठीक भीतर आंगन जिसमे अधाधुध घास लम्बी-लम्बी। साप—कीडामय। बंद मकान तो ऐसे जीवों का एकातवासा होता ही है। लाठी बजा-बजाकर सबसे पहले टूकी चमार अंदर गया। टूकी के छोटे भैया की कई साल पहले बाबू शमशेरसिंह ने नौकरी लगवा दी थी। उसी अहसान को चुकता करने के लिए वह आगे-आगे काम कर रहा था।

बाबू शमशेरसिंह, नम्बरदार ठाकुरचदनसिंह के इकलौते बेटे। पुराने जमाने के अंग्रेजी पढ़े-लखे। पढ़-लिखकर नायब तहसीलदारी की नौकरी

मिल गई थी। धीरे-धीरे तरक्की हुई और अब ए० डी० एम० के पद से रिटायर होकर गांव आये हैं। गाव आने का निर्णय उनका अपना था। महीनों पहले आये थे, तब अपने बचपन के साथी रघुवीरशरण के घर रुके थे। अपने आने का कार्यक्रम तभी तय किया था। रघुवीरशरण गांव के मौज्जिज आदमी हैं। सुनकर उन्होंने प्रसन्नता प्रकट की थी। गाव मे पढ़े-लिखे नही है, और जो हैं वे सब बाहर हैं। अंग्रेजी का एक सरकारी पत्र आ जाये तो पढ़ना मुश्किल हो जाता है। जो लड़के पढ-लिख भी रहे हैं उन को अंग्रेजी आती नही है, इसलिए सब अंधेर है।

बाबू जी जिनका नाम मात्र ही नई पीढ़ी के लिए गर्व का विषय था। जब भी बात आती, कहा जाता, हमारे गाव मे भी कलक्टर हैं। छोटे-मोटे कर्मचारियों को तो इसी से डरा दिया जाता। जब उस रात रघुवीरशरण के घर ठहरे थे, तब हरेक की इच्छा थी कि उन्हे देखें। इच्छा का कारण यह भी था कि गांव मे शायद ही किसी ने असली कलक्टर देखा हो। देखने का काम ही क्या। कभी गाव मे आयें तब तो देखें। अफसरों के नाम पर गाव मे ए० डी० ओ० के अलावा और कोई नही आता। बी० डी० ओ० भी शायद ही कभी आया हो।

अपनी आखों से देखकर भी ज्यादातर को विश्वास नही हुआ कि यह कैसे कलक्टर हैं? पूरे जिले के मालिक और ऐसे। दूसरे दिन सुबह रघुवीर शरण के छप्पर मे बैठे चाय पी रहे थे। नये-नये लड़के आते राम-राम करते और घूरकर देखते। रघुवीरशरण बताते कि फलां का लड़का है। यहीं स्कूल मे पढ रहा है। बाबू जी मीठी हँसी हँसते हुए नाम और कक्षा पूछते। सकोची स्वभाव बड़ी मुश्किल से जवाब दे पाते। गाव के लड़को की यह कमजोरी है कि वे अजनबी के सामने बोलते हुए शरमाते हैं। वैसे गाव मे धुआधार बुलवा लो, लेकिन बाहर के आदमी के सामने बोलते हुए पैर कांपते हैं।

कनपटियों पर हल्के-हल्के सफेद, हल्के बाल, बीच मे चमकता साफ और चिकना सिर, आंखों पर काले फ्रेम का चश्मा, लम्बी नाक, पीठ कुछ झुकी हुई, लम्बा-चौड़ा शरीर, रंग झक सफेद। बोलते तो ऐसे लगे हँस रहे हों। मन करता कि बैठकर बातें करते रहें। धीरे-धीरे बोलते—कुछ सोच-

सोचकर। जब सामने वाला बोलता तो चश्मे से दिखती आंखें धीरे-धीरे टिमटिमाती रहतीं, होंठों पर एक अजीब-सी रेखा खिंच जाती, पूरा ध्यान मानो वक्ता पर केन्द्रित हो जाता। गांव में ऐसे लोग कहीं हैं ? कोई किसी की नहीं सुनता। सुनता है तब, जब कुछ मतलब हो। बगैर मतलब के तो कोई दूसरे की कटी उंगली पर पेशाब भी नहीं करता।

इस युग में वे शायद अपवाद ही हैं। सीधे-सादे। ए० डी० एम० जब थे, तब भी ऐसे ही जो पहुंच गया—गरीब-गुरबा कर दिया काम। कभी किसी के सामने झुके नहीं और न किसी के आगे हाथ पसारा। उन्हीं के साथ के लगभग सभी अफसरों ने अपने-अपने मकान बनवा लिए। दुनिया भर की सम्पत्ति इकट्ठा कर ली। बाबू जी कुछ नहीं कर पाये। न कर पाने का कारण एक तो परिवार के संस्कार थे और दूसरे किसी बच्चे का न होना। बच्चा न होने से जो वीतरागी भाव व्यक्ति में पैदा हो जाता है, वह बाबूजी में भी कम नहीं था। जो लोग ठाकुर चदनसिंह को जानते हैं, वे बाबू जी की प्रकृति से भी परिचित हैं। ठाकुर चदनसिंह नम्बरदार के नाम से मशहूर। जिन्दगी ईमानदार रहकर काटी। हर समय माथे पर तिलक-चंदन लगाये भजन करते रहते। जब तक शरीर में ताकत रही, हर इतवार जमुना नहाने जाते रहे। ब्राह्मण के छोटे से छोटे लड़के को भी पालागे कहते। कभी सिरहाने नहीं बैठे। जितनी जमीन थी, उसी में गुजर की। जमींदार लाख कहते रहे और जमीन लेने के लिए, माने नहीं। कहते, क्या होगा एक डार दी है ईश्वर ने, यही फले-फूले, बहुत है। ज्यादा तिसना से क्या फायदा ! बड़े-बूढ़े बताते हैं—बचपन में जब भी शमशेरसिंह के पास बैठते तभी उन्हें नियम-धर्म की बातें समझाते। उनसे रामायण सुनते। और जब मरे तो ईश्वर ने खूब निभायी। शमशेर खुद आ गये थे शनिवार को मिलने के लिए। जब बिल्कुल ठीक थे और सुबह देखा तो लुढ़के पड़े हैं। माला तक भी हाथ में थी। ऐसे परोपकारी जीव की यही गति होनी चाहिए थी—जिसने भी सुना, यही कहा—ईश्वर ऐसी मौत सबको दे। सीधे सुरग गये हैं।

नम्बरदार की मौत के बाद बाबूजी गांव नहीं आये। खेती का सारा इन्तजाम रघुवीरशरण करवा देते। दूर रहकर खेती नहीं हो सकती। अध-

बंटाई पर दो तो आधे से ज्यादा बंटाईदार ही खा जाये और जो दे, उसमें खाद-पानी का हिसाब चुकता करने पर भी पैसे चढाऊ रहें। इसलिए बाबूजी साल के प्रारम्भ में ही पैसा ले लेते, फिर साल-भर वह कैसे भी करे। चाहे एक मन हो, चाहे हजार मन। कुछ लेना-देना नही।

गाव में सौ रुपये भी किसी के पास एक साल में खा-खर्च कर बचे रहें तो वही बोहरगत शुरू कर देता है। सौ रुपये तो बहुत हैं, बीस-तीस रुपये के लिए भी ज्यादातर सुबह-शाम घूमते रहते हैं, एडियां घिस जाती हैं लेकिन पैसा कौन दे? उल्टी-सीधी ब्याज पर सौदा पटता है। पैसा नही तब तक बेगार और करनी पडती है।

बाबूजी की गिनती गाव के बोहरो मे हो गई। हवा गर्म है कि रिटायर होने पर लाखो रुपये मिले है। सूना घर आबाद हो गया। अकेले आदमी, काम-धाम कुछ है नही, इसलिए मन भी लग जाता है। छप्पर के बाहर वाली घास साफ होकर उस पर लिसाई-लिपाई करवा दी है, बैठने में अब सुविधा होती है। रात-दिन बीड़ी सुलगती रहती, धुएं के अम्बार बाहर से भी नजर आते। अच्छे-अच्छे अत्ते खा भी आकर इधर-उधर की बातें कर उनका मन जीतने का ढोग रचते। जो भी आता, वही नम्बरदार से अपनी बातें शुरू करता। नम्बरदार कितने अच्छे आदमी थे, जिन्दगी-भर का गुणगान शुरू होता है और फिर बाबूजी का गुणगान। बाबूजी समझ नही पाते कि यह सब क्या है? गाव पहले भी कई बार आये हैं, तब तो ऐसा नही था। और जो थोडा-बहुत था भी वह सब इसलिए कि सभी को अपने-अपने बेटे-नातियों की नौकरी की गुजारिश करनी थी। तब बाबूजी सीधे सपाट कह देते कि नौकरी मेरे हाथ में थोडे ही है, हा, कही जगह-वगह निकले तो बताना, शायद कुछ कर सकू। बाबूजी का उत्तर किसी की समझ में नही आता। स्वार्थ की दृष्टि पर जो परदा पडा रहता है, वह कहां समझने-देखने देता है। फिर भी ज्यादातर यही समझते कि यह हो ही नही सकता कि वे किसी की नौकरी न लगवा सकें। कुछ लोगसीधे-सीधे और कुछ घुमा-फिराकर लेन-देन की बातें करते। सुनकर बाबूजी का मन जल उठता। नम्बरदार चुपचाप माला फेरते रहे।

दोष उनका भी नही है जो लेन-देन की बातें करते हैं। गांव में जब

प्रत्यक्ष दूसरी जगह यह सब चल रहा है तब कैसे मान लें कि लेन-देन बन्द हो गया है। पुरोहितो का जो मिलिट्री में कप्तान है, उसका भाई पाच-पाच हजार रुपये लेकर मिलिट्री में सिपाही बना रहा है। धधा-सा कर रखा है। बाबूजी को भी ज्यादातर लोग इसी प्रकृति का समझते हैं। किसी के माथे पर तो लिखा है नही कि कौन ईमानदार है और कौन बेईमान।

गाव आने के आठ-दस दिन बाद ही रात में कुछ चोर चढ आये। घर में पीछे से कूमल लगाया था। जल्दी ही बाबूजी की नींद खुल गई थी और दूसरे चुन्नी भगत ने भी मन्दिर पर ढोलक छेड दी थी, वरना सब कुछ ले भागते। छोटे-मोटे बर्तनो के अलावा कुछ नही गया।

सुबह भीत फूटी देखकर बाबूजी चिंतित हो उठे। गाव मे जिसने भी सुना, वही पूछने आया। सबसे पहले पैसे की बात। कितने गये? एक भी नहीं। थे ही कहा? पैसा तो सब बैंक मे है। यहा उसका क्या होता? ज्यादातर को निराशा हुई। कलक्टर रहे है, घिसे-मजे है। आजकल का जमाना पैसे बक्से मे रखने लायक रह गया है क्या। और वह भी गाव में। दस रुपये के लिए तो हत्या कर जमीन में गाड दे, तो लाखो के लिए पाताल से कम में क्या? बाबूजी इन मामलो मे व्यावहारिक है।

रघुवीरशरण भी आ गये। पच-सरपच, नेता-कुनेता सब इकट्ठे हो गये। घर भर गया। ज्यादातर की राय थी कि नामजद रपट करो। बाबूजी कहते जब किसी को देखा ही नही है तो फिर नामजद रिपोर्ट का क्या फायदा? नेता-कुनेता कान मे फुसफुसाते —हम देंगे गवाही, आप तो रपट कर दो—बस। बाबूजी की समझ मे नहीं आ रहा है यह सब। अपने सम्पूर्ण सेवा-काल में यद्यपि ऐसे बहुत-से मामले आये और वे सुलझाये भी। गांव की राजनीति को वे अच्छी तरह जानते है। नायब तहसीलदार से लेकर ए० डी० एम० तक की नौकरी के विपुल अनुभव उनके पास हैं। फिर भी आदमी जब दूसरे गाव की आग को देखता है तब और अनुभूति होती है और जब अपने घर की आग मे स्वयं जलता है तब की घनीभूत पीडा और होती है—अधिक बेचैन और अव्यक्त।

गाव के नेताओ के सामने रघुवीरशरण अधिकतर चुप ही रहते हैं। नेताओं के जैसे काम हैं, उनसे उन्हें कम-से-कम अच्छा तो नही कहा जा

सकता। पुलिस और ब्लाक की दलाली भी क्या नेतागीरी ही है ? हर हाई स्कूल-फेल दलाल हो गया है। जाति के रंग की टोपी पहन गांव को बदरंग कर रखा है। जरा-जरा-सी बात पर राजनीति। कहीं कोई काम हो जाये, पहुंच जाते हैं—जैसे ऊपर उड़ती चील मरे जानवरों की गंध पहचान लेती है। पिछले दिनों छिद्दी ने अपनी बहू पीट दी थी, लिखवा आये रपट। छिद्दी ने अपनी साइकिल बेचकर दो सौ रुपये थानेदार को दिये थे। साइकल पर रखकर गर्मियों में चुस्की बेच आता था। अब वह भी गई और बहू भी। सुनते हैं बहू को बारह सौ रुपये में जमुना पार बेच आये। ऐसे नेता जब गांव में घूमते हैं, तब छाती निकालकर, जैसे वही थानेदार के साले हों।

बाबूजी के खिन्न मन को रघुवीरशरण ने तरह-तरह से समझाया। *गांव अपने-आप में जैसा है, वैसा ही रहेगा। उदास होने और पश्चाताप* करने से कुछ भी नहीं हो सकता। जब पढ़े-लिखे और समझदार आदमी शहर भागते रहेंगे, तब अनपढ़ और असभ्य ही तो गांव में रहेंगे। उनकी जैसे समझ में आयेगा, वैसे चलायेंगे गांव को। अब आप आये हैं ऐसे हरेक आदमी चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो रिटायर होने के बाद अपनी देहरी पर आये, अपने घर और गांव में मोह रखे तब कुछ परिवर्तन हो सकता है। वह भी एकदम थोड़े ही—धीरे-धीरे।

रघुवीरशरण का समझाना, चीजों को स्पष्ट करना था। वैसे भी बाबूजी बच्चे तो हैं नहीं, सो न समझते हों। सारी उम्र ऐसे ही झमेलों में बटी है, लेकिन अब तक उनकी मान्यता थी कि शायद चुप और अलग रहने वाले को कोई कुछ नहीं कहेगा। ऐसा नहीं हुआ। होता भी नहीं है। बाबूजी को यही दुख खा रहा है। उन्हें याद है रघुवीरशरण को कैसे-कैसे मुकदमों में फंसाया गया है, और वे हैं कि हर हालत में चूंकि गांव में रहना है इसलिए रह रहे हैं। कुछ भी सही लेकिन रघुवीरशरण ने कभी ओछी हरकत नहीं की, चाहे कितना ही बड़ा संकट झेला हो। राजनीति जरूर करते हैं, मगर ओछी नहीं। गांव में उनका जो सम्मान है, वह कुछ गोसाईं के कारण है और कुछ इसलिए भी कि उनके एक-से-एक रिश्तेदार आला अफसर हैं। कब काम पड़ जाये ? इसलिए विरोध भी होता है और

राजनीति भी चलती है किंतु विजयी हमेशा वे ही रहे है।

रामचरन की अपनी चालें है। पिछले तीन साल मे ही उभरकर आया है। बडी लड़की के विवाह में पाच हजार रुपये लिये हैं, चीजें सभी दबा ली और अब भेजता भी नही। लड़की रात-दिन खेत मे खटती है और स्वय राजनीति करते हैं। फौज से भागा चुन्नू प्रमुख सहायक है। बगैर गालियो के बात नही करते, इसलिए पचायत में भी लोग कम ही बुलाते हैं। बनी-बनायी पचायत उजाडनी हो तो बुला लो रामचरन-चुन्नू को। राजीनामा भी फौजदारी में बदल जाये। पहली बार मथुरा गये थे तो कडक्टर से झगड़ा हो गया था। रास्ता पर जाकर कडक्टर-ड्राइवर ने मिलकर वो मरम्मत की कि छटी का दूध याद आ गया। गाव में आकर कहा कि पटक लग गई थी। रोज शाम को शराब पीते हैं—दूसरो के पैसे की।

रामचरन बाबूजी को लेकर बहुत परेशान है। कहता फिर रहा है ऐसा डरपोक आदमी नही देखा। सामान भी गया और रपट भी नही की। मुझे मालूम है सामान कहा है? लेकिन जब सामान वाला ही कुछ नही कह रहा तो हम क्या कर सकते हैं? रघुवीरशरण की बातो में हैं। देखें कैसे दिलवा दें सामान। अबकी डकैती पडेगी, डकैती। रामचरन बेहद क्रोध में है, वह शाम के धुधलके में जाकर बाबूजी को खूब समझाता है लेकिन बाबूजी की समझ में उसकी एक भी बात नही आ रही। सारी गोटिया बेकार जा रही हैं। वर्तमान और भविष्य की डरावनी छवियां प्रस्तुत करता है, बाबूजी चुप रहते हैं।

रामचरन की एक न चली। उम्मीद में जितने पैसो की बीडी पी गया है वे भी वसूल होते नजर नही आते। शाम को नये-नये विचार सोचने के लिए शराब भी पीना जरूरी था, वह अलग। ऐसा आदमी दुनिया में कोई दूसरा शायद ही हो। अपने बाप की नकल कर रहा है। वह जमींदारी का समय था, तब की बात और है। उसकी उम्र तो कट गई, लेकिन इस जमाने में भी सन्त बने रहना, सिवाय मूर्खता के और क्या है। बस एक बार कर दे रपट, फिर सब भुगत लूगा। रहे होगे कलक्टर, गांव मे सब कलक्टरी धरी रह जाती है। यहा के कलक्टर तो हम हैं। एक बार चंगुल में आ गया तो दम उतार दिया जिदगी-भर का भूत। रामचरन के दिमाग की नसें अकड़

गई। चेहरे पर एक अतिरिक्त भाव। वह सोच रहा है लगातार—मुर्गी हाथ से न निकले, जैसे भी हो। सोचते हुए पुरानी यादें उभर आती हैं। इसी गाव की राजनीतिक फौजदारी मे ही तो उसका बाप मरा था। तब कोई गवाही देने वाला भी नही था। और अब सैंकडो गवाही। वह अब दूसरों को लड़ायेगा, खुद लड़ना तो अपने-आप में मूर्खता है। खुद लडे, फिर नेतागीरी ही क्या?

बाबूजी ने रघुवीरशरण से उस बारे में चर्चा करनी ही बन्द कर दी। जो गया सो अब लौटने से रहा। इसलिए दिमाग खराब करने मे फायदा भी क्या? लेकिन बाबूजी के दिमाग मे रह-रहकर यह बात घुमड़ रही है कि इस तरह कब तक रहा जा सकता है। राजनीति कर नही सकते, क्योंकि राजनीति का मतलब है गुंडागर्दी। वह बस की बात नही है। न इतने शक्तिशाली कि दूसरों को पकडकर बिना वजह जूते लगवा सकें। और डरकर रहे तो अब चोरी, कल डकैती और परसों कोई भी गला घोट सकता है। जिस तरह गाव की आदिम गंध मे चिरायंध आ रही है उसमे सास कैसे ली जा सकती है? वह अकेले कुछ नही कर सकते। रघुवीरशरण ही क्या कर पाये हैं। सब-कुछ लुटाकर बैठे हैं फिर भी दस साल का लड़का कुछ अबे-तबे कर जाये तो सिवाय शांति से सुन लेने के और कुछ हाथ मे नही है। कुछ कहो तो और सुनो।

एक लम्बी सास बाहर निकाल बाबूजी छप्पर मे बिछी खाट पर लम्बे हो गये। आंखें छप्पर मे लगे बांसो की गिनती मे अटक गईं। माथे पर बना मकड़जाल और भी गहरा उठा—जैसे मक्डी अन्दर फसकर छटपटा रही हो—एक अव्यक्त पीडा उनके चेहरे पर सिमटती जा रही थी।

राजनीति भी चलती है किंतु विजयी हमेशा वे ही रहे हैं।

रामचरन की अपनी चालें हैं। पिछले तीन साल में ही उभरकर आया है। बड़ी लड़की के विवाह में पांच हजार रुपये लिये हैं, चीजें सभी दबा लीं और अब भेजता भी नहीं। लड़की रात-दिन खेत में खटती है और स्वयं राजनीति करते हैं। फौज से भागा चुन्नू प्रमुख सहायक है। बगैर गालियों के बात नहीं करते, इसलिए पंचायत में भी लोग कम ही बुलाते हैं। बनी-बनायी पंचायत उजाड़नी हो तो बुला लो रामचरन-चुन्नू को। राजीनामा भी फौजदारी में बदल जाये। पहली बार मथुरा गये थे तो कडक्टर से झगड़ा हो गया था। राया पर जाकर कंडक्टर-ड्राइवर ने मिलकर वो मरम्मत की कि छठी का दूध याद आ गया। गांव में आकर कहा कि पटक लग गई थी। रोज शाम को शराब पीते हैं—दूसरों के पैसे की।

रामचरन बाबूजी को लेकर बहुत परेशान है। कहता फिर रहा है ऐसा डरपोक आदमी नहीं देखा। सामान भी गया और रपट भी नहीं की। मुझे मालूम है सामान कहां है? लेकिन जब सामान वाला ही कुछ नहीं कह रहा तो हम क्या कर सकते हैं? रघुवीरशरण की बातों में हैं। देखें कैसे दिलवा दें सामान। अबकी डकैती पड़ेगी, डकैती। रामचरन बेहद क्रोध में है, वह शाम के धुंधलके में जाकर बाबूजी को खूब समझाता है लेकिन बाबूजी की समझ में उसकी एक भी बात नहीं आ रही। सारी गोटियां बेकार जा रही हैं। वर्तमान और भविष्य की डरावनी छवियां प्रस्तुत करता है, बाबूजी चुप रहते हैं।

रामचरन की एक न चली। उम्मीद में जितने पैसों की बीड़ी पी गया है वे भी वसूल होते नजर नहीं आते। शाम को नये-नये विचार सोचने के लिए शराब भी पीना जरूरी था, वह अलग। ऐसा आदमी दुनिया में कोई दूसरा शायद ही हो। अपने बाप की नकल कर रहा है। वह जमींदारी का समय था, तब की बात और है। उसकी उम्र तो कट गई, लेकिन इस जमाने में भी मस्त बने रहना, सिवाय मूर्खता के और क्या है। बस एक बार कर दें रपट, फिर सब भुगत लूंगा। रहे होंगे कलक्टर, गांव में सब कलक्टरी धरी रह जाती है। यहां के कलक्टर तो हम हैं। एक बार चंगुल में आ गया तो बस उतार दिया जिंदगी-भर का भूत। रामचरन के दिमाग की नसें अकड़

गई। चेहरे पर एक अतिरिक्त भाव। वह सोच रहा है लगातार—मुर्गी हाथ में न निकले, जैसे भी हो। सोचते हुए पुरानी यादें उभर आती हैं। इसी गाव की राजनीतिक फौजदारी में ही तो उसका बाप मरा था। तब कोई गवाही देने वाला भी नही था। और अब सैकडो गवाही। वह अब दूसरों को लड़ायेगा, खुद लडना तो अपने-आप में मूर्खता है। खुद लडे, फिर नेतागीरी ही क्या ?

बाबूजी ने रघुवीरशरण से उस बारे में चर्चा करनी ही बन्द कर दी। जो गया सो अब लौटने से रहा। इसलिए दिमाग खराब करने से फायदा भी क्या? लेकिन बाबूजी के दिमाग में रह-रहकर यह बात घुमड रही है कि इस तरह कब तक रहा जा सकता है। राजनीति कर नही सकते, क्योंकि राजनीति का मतलब है गुंडागर्दी। वह बस की बात नही है। न इतने शक्तिशाली कि दूसरों को पकडकर बिना वजह जूते लगवा सकें। और डरकर रहे तो अब चोरी, कत्ल डकैती और पत्मो कोई भी गला घोट सकता है। जिस तरह गाव की आदिम गंध में चिरायध आ रही है उसमे सास कैसे ली जा सकती है ? वह अकेले कुछ नही कर सकते। रघुवीरशरण ही क्या कर पाये हैं। सब-कुछ लुटाकर बैठे हैं फिर भी दस साल का लडका कुछ अबे-तबे कर जाये तो सिवाय शांति से सुन लेने के और कुछ हाथ मे नही है। कुछ कहो तो और सुनो।

एक लम्बी सांस बाहर निकाल बाबूजी छप्पर मे बिछी खाट पर लम्बे हो गये। आंखें छप्पर मे लगे बांसों की गिनती मे अटक गई। माथे पर बना मकडजाल और भी गहरा उठा—जैसे मकडी अन्दर फसकर छटपटा रही हो—एक अव्यक्त पीडा उनके चेहरे पर सिमटती जा रही थी।

अजनबी पहचान

पडित रामधन को अचानक देख मैं हतप्रभ रह गया। वर्षो बाद इस अवस्था मे अचानक मिलेंगे—मैं सोच भी नही सकता था। उन्होने मुझे दूर से ही देख लिया था—शायद। भागते-चिल्लाते आ रहे थे सडक के उस तरफ से, साइकिल, स्कूटर और मोटर की बगैर चिंता किये। चिंता तो उसे हो जिसे होश हो, उन्हे तो होश ही नही था। उन्होने मुझे क्या देखा, लगा जैसे अनमोल वस्तु मिल गई है, जिसे वे कब से चाह रहे थे। हाफते-से वे मेरे पास आये और बिना कुछ सोचे-समझे गले से लिपट गये। मैं ऐसा कुछ भी नही कर सका। साथ ही यह चिंता और लगी रही कि कही कोई देख न ले। सारी इज्जत और प्रतिष्ठा धूल मे मिल जायेगी। मेरे कधे पर सिर रख अत्यन्त भावुक हो उठे थे—हाथो की पकड और भी मजबूत हो गई थी। बडी मुश्किल से उन्हें हटाकर मैंने चारो ओर देखा, कही कोई परिचित तो नही देख रहा है। कोई नही था। किसे फुरसत है—इस तरह के दृश्यो को देखने की। महानगर की अपनी अलग जिंदगी होती है—सबके साथ रहते-चलते हुए भी अकेली।

रामधन की भावुकता अभी भी उन्हे घेरे थी। वे कुछ बोलने का प्रयत्न करते बार-बार, लेकिन बोल नही पाते। लगातार चोया-सी आखों मे मुझे घूरे जा रहे थे। स्थिति को समझ मैंने उनसे घर चलने को कहा। एक बार तो वे तैयार हो गये, लेकिन दूसरे ही क्षण सोचकर बोले, चलता तो परनौकरी पर जाना है। बनिया की नौकरी है, जरा-सी देर होने पर ही दूसरी नौकरी ढूढने की धमकी दे देता है। तुमसे कितने साल बाद भेंट हुई है, याद नही आता। अब तो सब एक कल्पना बनकर रह गई है, यह

जिंदगी। तुम अफसर हो गये—होते भी। बड़े घरों में चपरासी ही थोड़े पैदा होते हैं। यह हम जैसे''' वे बोलते हुए रुक गये। आंखों में रोशनी आती चली जा रही थी। मैंने अपने बैग में विजिटिंग कार्ड निकाल उन्हें देते हुए कहा कि—घर आना कभी, बैठकर दुबारा बचपन की उसी जिंदगी को जियेंगे।

कार्ड लेकर वे चल दिये थे, शाम को आने की कहकर। चलते समय उन्होंने हाथ उठाकर नमस्कार की थी। मैं गुमसुम-सा हो गया था। कुछ भी कह सकने की हिम्मत उस समय नहीं हुई। उन्होंने दो-एक बार पीछे मुड़कर देखा था और कहा था कि मैं शाम को जरूर आऊंगा। मैंने हाथ हिला दिया था—स्वीकृति का।

उनके चले जाने के बाद मैं कुछ हल्का-सा हुआ। एक लम्बी और खुशनुमा सांस ली और चल दिया।

सारे रास्ते रामधन ही छाये रहे। अब कैसे हो गये हैं—भुतहा। यदि वे मेरे पास नहीं आते तो मैं जिंदगी में कभी पहचान ही नहीं सकता था। बिल्कुल बदल गये हैं। बड़ी-बड़ी बोलती-सी आंखें गड्ढों में बैठ गई हैं, जैसे धक गई हों, लम्बा-चौड़ा शरीर, जिसे लेकर रामधन स्कूल के किसी भी बच्चे को पीट देते थे, मास्साब का डंडा पकड़ लेते थे, जो ललकार कर हैड मास्साब से कह देते थे—पढ़ेंगे तो अपने लिए और न पढ़ेंगे तो अपने लिए, यहां पिटने नहीं पढ़ने आये हैं। फीस लेते हो तब पढ़ाते हो, कोई सैंत में नहीं। यह सब कह सकने की हिम्मत उन्हीं में थी और तो सब हैड मास्साब का चेहरा देखते ही कांप उठते थे। उन रामधन की कभी ऐसी भी गति होगी, कोई सोच नहीं सकता था।

घर आकर मैं चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया था। छोटी बच्ची आकर गोदी में बैठ गई थी, झिड़क कर मैंने उसे नीचे उतार दिया। पत्नी चाय दे गई थी—बड़ी बेटी रश्मि शायद अपनी स्टडी में कुछ पढ़ रही थी, अपना ध्यान बटाने के लिए मैंने रश्मि को आवाज दी, उसने शायद सुना ही नहीं। उसकी यह कमजोरी भी है कि जब वह पढ़ रही होती है, तब चाहे घर में कुछ होता रहे उसे कुछ नहीं सुनाई पड़ता। दूसरी आवाज और जोर से दी—वह 'जी पापा' कहकर दौड़ी चली आई। पास आकर खड़ी

हो गई। मैं अचानक झुंझला-सा उठा था—तुम्हें कुछ पता भी है कि घर में क्या हो रहा है, क्या नहीं। हमेशा ऐसी रहती हो जैसे जाने कितना बोझ सिर पर रखा है। यह उम्र इसके लिए होती है क्या? जब हम तुम्हारे बराबर के थे, तब कुछ भी नहीं सोचते थे। खा लिया, पी लिया, जो कह दिया पढ़ लिया और बस।—वह चुपचाप सुन रही थी, मैं कहे ही जा रहा था। आंखें ऊपर कर उसकी ओर देखा वह।अपने को कुछ डरी-सी अनुभव कर रही थी। बड़ी मुश्किल से अपने बेवजह आक्रोश पर काबू पाया।

दिमाग में रामधन घूमते रहे। उनके साथ मेरा अपना अतीत भी। मैं बचपन में रामधन से अलग रहने की सोच भी नहीं पाता था। हर समय उन्हीं के साथ। पढ़ने से लेकर खेलने-कूदने तक के संपूर्ण कार्य उनके अभाव में संभव ही नहीं थे। यद्यपि घर में इस बात को लेकर रोज संघर्ष होता। पिताजी बहुत नाराज थे। माताजी ने भी दो-चार बार बैठ-कर समझाया था कि—रामधन की क्या है, न पढ़ा तो घास खोद लेगा। मगर तुम नहीं पढ़ पाये तो? सोचा है कभी? तुम कैसे परिवार के बेटे हो, तुम्हारी समझ में यह आता ही नहीं। नीच आदमियों के साथ रहने से बुद्धि भी तो नीची हो जाती है। भगवान तो यह देखता है कि जिसे मैं बुद्धि दे रहा हूं, वह इसके लायक है भी या नहीं। तुम्हारी दिन पर दिन बिगड़ती जा रही आदतों से भगवान खुश थोड़े ही रहेगा। पर तुम्हारी समझ में आये तब न। माताजी अपनी बात धीरे-धीरे कहती, समझाती हुई-सी। कुछ-कुछ दिमाग में भरती-सी। पिताजी की गर्जना, उनकी जलती आंखें और हड्डी-पसली तोड़ देने की धमकी मेरे बाल-मन में विद्रोह जमा देती और फिर मन करता कि जैसे भी हो, अब तो रामधन के साथ ही रहना है।

जैसे ही मौका मिलता मैं दौड़कर रामधन के घर जाता और सारी बातें उसे बता देता। मेरी स्थिति की नाजुकता को देखकर रामधन चिंतित-सा हो जाता। वह बाहर ले जाकर कहता—मेरे पास है क्या जो तुम मेरे पास रहते हो? तुम्हारे माताजी-पिताजी ठीक ही कहते हैं, हम नीच हैं। ब्राह्मणों में जन्म लिया है तो क्या। जिस पर पैसा नहीं होता वह नीच ही होता है—बड़े लोगों की नजर में। रामधन की बातें सुनकर

ऐसा लगता मानो वह नाराज हो गया है। फिर मैं उन्हे मनाने लगता और थोड़ी देर की चुप्पी के बाद फिर वही राग बज उठता। रामधन सब-कुछ भूल जाता कि उसके लिए मेरे घर वाले क्या सोचते हैं।

रामधन का यह निश्छल प्रेम मेरे मन को जीत लेता। मैं मन-ही-मन प्रण करता कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, रामधन को नही छोड़ूंगा।

जब मैं हाई स्कूल में आया, तब बगैर कहे वे पता नही कहां चले गये थे। ऐसा उन्होंने पहली बार ही किया था, अतः मुझे बहुत बुरा लगा। कई बार उनके घर भी गया, पूछा भी, उत्तर कुछ नही मिला—सिवाय इसके कि कहां जायेगा—मरने गया होगा। यह स्थिति क्यों हुई, उन्होंने कभी नहीं बताया। मैंने कभी उनके घर में लड़ाई होते भी नहीं देखी। वैसे भी वह ज्यादातर घर में रहते भी कहां थे। और घर में रह कर करते भी क्या। पिताजी अपनी हल्की-सी पंडिताई से कुछ कमा लाते और शाम हुई कि गांजे की सुलप्पाई शुरू। चालीस साल की उम्र से आंखें कमजोर पड़ गई थीं। रात में बिल्कुल ही नहीं दिखाई पड़ता था। फिर भी नाम रख देते, विवाह पढ़ देते। मां तीज-त्यौहार आशीर्वाद देने के बहाने कुछ मांग लाती। और कुछ आमदनी नही थी। गांव के लिए यह आमदनी पेट भरने के लिए बहुत है। ज्यादातर घर ऐसे ही हैं जिन्हें दाल-रोटी के अलावा और कुछ नहीं चाहिए। चाहिए इसलिए भी नहीं कि उन्हें मालूम भी नहीं है कि दुनिया में कुछ और चीजें भी हैं जो जिंदगी जीने के लिए जरूरी हैं। भयंकर बीमारी में भी जड़ी-बूटियां और झाड़-बुहार ही होती हैं। दस-पांच घरों को छोड़कर कोई डॉक्टर के पास नहीं जाता। पिछली बार की बात तो है नेकसा की बहू के पेट में बच्चा तिरछा हो गया था, किसुनप्यारी ने बहुत कहा कि शहर के डांगधर पेट चीरकर निकाल देगा। खुद नेकसा ने ही इसका विरोध किया था। पेट चीरकर जन्मा बच्चा किस काम का, भगवान चाहेगा तो और हो जायेगा। डांगधर पता नहीं क्या-क्या करेगा। अंदर बहू डकरा-डकराकर मर गई, लेकिन उसे शहर ले जाने के लिए कोई तैयार नहीं हुआ। बाहर बैठे-बैठे सौ-डेढ़ सौ रुपया रामायण के पाठ में जरूर खर्च दिये। पंडितजी ने कहा था कि भगवान का स्मरण होना चाहिए तब यह अशुभ दशा टलेगी।

कुछ दिन बाद रामधन अपने-आप ही लौट आये। रात मे आये थे। सुबह उठकर जब मैं बाहर बैठा था, तब अचानक दिखाई दिये। मैं बगैर सोचे-समझे उनकी ओर दौड़ पड़ा था। मुझे देखकर उन्होंने बड़े प्यार से अदर बुलाया। हम दोनों आगन मे पड़ी चारपाई पर बैठ गये थे। रामधन चुप थे। पास मे आटा पीस रही उनकी मा निरतर बड़बड़ाये जा रही थी, यदि ऐसा नाक वाला था तो लौट क्यो आया, वही रहता। तब पता पड़ता कौन खिलाता रोटी। शहर मे कोई पानी को तो पूछता नही। गये थे भागकर शहर जैसे वहा तुम्हारे लिए थानेदारी धरी थी। लौटते समय शर्म भी नही आई। गाव मे हल्ला मचवा दिया कि पडितजी का लड़का भाग गया, रही-सही इज्जत भी मिट्टी मे मिला दी। एक तो वैसे ही ब्याह-शादी वाले नही आते ऊपर से यह कलक और लगा लिया। हे भगवान, मैं तो बाझ ही भली थी, ऐसे कपूत से तो। एक तो दिया और वह भी ऐसा कुलबोर। मा की आखे डबडबा आई थी, गला भर्राने लगा था। मा की इस हालत को देख मैं नीचे को गर्दन झुकाकर बैठा रहा। तब रामधन ने बाहर चलने को कहा। हम दोनों उठकर बाहर आ गये।

बाहर आते ही रामधन एकदम नार्मल हो गये थे। क्षण भर मे ही उनका यह बदलाव मुझे अच्छा नही लगा। मा ने इतना कहा, फिर भी कोई असर नही। अचानक मैंने पूछ भी लिया। उत्तर भी वही था—कहा तक चिता करें, एक दिन का काम तो है नही। रोज-रोज वही पारायण, मा भी कहेगी और चाचा भी। सुनते-सुनते तग आ गया हू। इसलिए तो बाहर गया था। कही कुछ नौकरी वगैरह मिल जाती तो यही लोग राम और श्रवण से तुलना करते। पर भाग्य को कहा ले जाये, कुआ से निकल-कर भाड़ मे गिर पड़े। बीड़ी बुझ गई थी, वे चुप हो गये थे। मैं भी उनके साथ ही गभीर हो उठा था। क्या कहू, मेरी कुछ भी समझ मे नही आ रहा था। जिनको मैं अपनों से ज्यादा और समझदार मानता हू, उन्हें समझाऊ यह कैसे सभव था।

रामधन ने माचिस निकाली और बीड़ी पुन. सुलगा ली। चबूतरे के पास से निकलते हरफूल और जित्ती भी रामधन को बैठा देखकर रुक गये। कब आये महाराज? हरफूल ने कहा।

रात। रामधन ने उसी लहजे में उत्तर दिया।

कहा रहे इतने दिन ?

अलीगढ।

भैया से मिले थे, क्या ?

नही मिल पाया। जाते-जाते बीमार पड गया इसीलिए किसी से भी नही मिल पाया। रामधन ने जेब से बीडी-बडल निकाल हरफूल को दे दिया था। दोनों ने बीडी सुलगा ली। इधर-उधर की बातें होती रहीं। हरफूल अपनी बडी-बडा में था। उसने पिछले महीने ही ट्रैक्टर लिया है। और अभी-अभी जित्ती का दस बीघा खेत रेहन रखा है। ट्रैक्टर में सुनते हैं उसका एक पैसा भी नहीं लगा, कुछ अपनी बहन की चीज बेची हैं और कुछ बैंक ने दिया है। यह बात सारे गाव को मालूम है फिर भी हरफूल के अहं का ठिकाना नहीं। चलने का ढग ही बदल गया है। जब चलता है तब गर्दन कबूतर की तरह फुला लेता है और छाती बाहर की ओर निकाल लेता है। जित्ती चुपचाप बैठा हा में हा मिला रहा था। मुफ्त की बीडियो के साथ बातें न हों यह कैसे सभव है! किसुनी हलवाई से बात शुरू हुई और पहुच गई अलीगढ। किसुनी हलवाई जिसकी लडकी पिछले साल ही अपने आदमी को छोड गाव आ गई थी। सारे गाव मे बदनामी है लेकिन वह है अपने मन की धनी। कहती है बाप का कितना भी काम कर लू घर का काम है, पर उस आदमी का काम जो देखने में ही जमूड़ा-सा है, मुझसे संभव नहीं है। पुजारिन उसके तरह-तरह के किस्से सुनाती है और गाव के हर जवान लडके से उसका सम्बन्ध जोडती है। रामधन ने कहा, ये क्या है, शहर में जाकर देखो तो आखें चौंधिया जाती हैं। पता नही पडता, कहा गये हैं! लडका-लडकी ऐसे घूमते है, देखते ही शरम आती है। ऐसे-ऐसे कपड़े, सब-कुछ देख लो। क्या जमाना आ गया है। वहा एक लडकियो का कॉलिज है, पूरा स्वर्गाश्रम है। ऐसी अलबेली लडकिया देखते ही नजरें फिसलती हैं। देह ऐसी चिकनी कि मक्खन भी क्या होगा ? सुना है रिक्शा वालों की मार्फत चलती है।

हरफूल और जित्ती के मुह में पानी भर आया था। बगैर कुछ कहे रामधन की ओर देखते रहे।

रामधन अलीगढ़ से आने के बाद ऐसी ही बातें करते रहते। लड़के उन्हे घेरे रहते। उनका मन ऐसी ही बातो मे तो रमता है। तब उनमें एक उत्साह भी आ गया था और निराशा भी। वे बातें करते हुए हुमकते और फिर धीरे-धीरे अपने आप बुझते चले जाते।

उसी साल पढ़ने के लिए मैं अपनी बुआ के पास चला गया था। तब से लगातार बाहर रहने के कारण रामधन से गाव मे कभी भेंट नही हो सकी। वहा पहले-पहल उनकी बहुत याद आयी। नयी जगह सब अपरिचित, ऊपर से बुआ का अनुशासन। इसलिए मेरा मन हमेशा रामधन की याद मे डूबा रहता। बालमन मे कल्पना उठती—रामधन यहा भी आ सकते है, उन्हे भी तो मेरी याद आती होगी। स्कूल मे जाता तो डरा-सा, सहमा-सा बैठा रहता, तब रामधन की और भी याद आती।

इतने वर्षो बाद रामधन का मिलना मन मे अपने संपूर्ण आभिजात्य के बाद हलचल मचा गया था। पूरा दिन बचपन की खोई-सी स्मृतियो मे व्यतीत हुआ। शाम को मैंने उनके खाने के लिए कह दिया। बच्चे अति उत्साह मे थे। जब भी किसी का खाना होता है बच्चे इस तरह किलकते हैं मानो उन्हे पहली बार कोई खुशी हो रही हो। छोटी बच्ची ठुमकती हुई मेरे पास आई और तुतलाते हुए पूछने लगी कि आज आपके बचपन के दोस्त आ रहे है। मैंने हा कह दिया। सुनकर वह हंसती हुई चली गई। उसे इतनी खुशी क्यो हुई, नही जानता।

शाम को रामधन आये। उसी हालत मे। शायद दुकान से सीधे चले आ रहे थे। चेहरे पर प्रसन्नता के साथ विषाद की गहरी लीक थी। मैं उन्हे अदर ड्राइग रूम मे ले आया था। सोफे पर बैठते हुए वे कुछ अदर धसते समय सकुचा और डर रहे थे। मैंने पानी के लिए आवाज दी। सुनकर बच्चे दौडे चले आये। नमस्ते करने को कहा तो खिलखिलाकर भाग गये। रामधन बच्चो की इस हरकत को देखकर धीरे-से बोले—बच्चे है, नये आदमी से शरमाते हैं।

बैठे-बैठे इधर-उधर की बातें हुई। चाय पी। रामधन इस बीच उखड से गये थे। वे बार-बार नॉर्मल होने की कोशिश भी कर रहे थे। उनके चेहरे पर आते-जाते भावो से यह लग रहा था जैसे वह यहां आकर प्रसन्न

नहीं हैं। अंदर बच्चे उनकी आकृति, वेश-भूषा, बैठने का ढंग आदि की नकल उतार रहे थे।

बगैर खाना खाये रामधन उठकर चले गये। मेरे बहुत कहने पर कोई जरूरी काम बता दिया। बच्चों द्वारा नकल, घर का कृत्रिम ठाठ-बाट देखकर उनका मन लगता भी कैसे। वे शायद मुझसे उसी रूप में मिलना चाहते थे, जिस रूप में बचपन बीता था। उनकी भोली-भाली बुद्धि समय के भीषण दबावों को नकारती है अब भी, इसलिए वे एडजस्ट नहीं कर पाये—न यहां और न जिंदगी में। जिस तरह की जिंदगी वे जी रहे हैं वह मेरे मन में खिंचे उनके बाल-स्वरूप से एकदम अलग है। वे शायद इसे नहीं जानते अथवा जानते भी हों तो अब कर भी क्या सकते हैं।

धीरे-धीरे बच्चे अंदर आ गये थे। बीच की बच्ची ने गंभीर होते हुए कहा—पापा, ये ही थे आपके दोस्त। कितने गंदे थे। तब फिर आप भी बचपन में बहुत गंदे होंगे। छिः, गांव के आदमी बहुत गंदे होते हैं। कहती हुई खिलखिलाकर भाग गई। मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर विरोध करना चाहता था, लेकिन अब देर हो गई थी। मन मसोस कर रह गया।

छोटी बच्ची—' पापा गंदे हैं! हमारे पापा गंदे हैं!" कहती हुई धीरे-धीरे अंदर चली गई।

रामराज

चौधरी हरिपालसिंह प्रधानी के चुनाव मे भारी मतो से विजयी रहे। नतीजा सुनकर सारा गाव भौचक रह गया। लोगों के मुह खुले के खुले ही रह गये। नौहझील गयी मालाए लौटती बार जमुना के जल मे फेंक दी गयी। मिल गया प्रजातत्र—असली प्रजातत्र, महात्मा गाधी का रामराज! गाव की औरतें नतीजा सुनकर स्थितप्रज्ञ-सी हो गईं। पुजारिन विहारीजी के मंदिर पर गाली दे रही है। लडके चौपाल पर इकट्ठे हो गये—एक डली गुड़ की उम्मीद में। चबूतरे पर हुक्के कुड़कुड़ा रहे हैं।

रात-भर गांव मे शायद ही कोई सोया हो। परसो पड़ी डकैती से लोग अब भी काप रहे हैं। बाजार मे तो शाम से ही मुर्दनी छा गई है।

हरिपाल के चौपालनुमा चबूतरे पर गैस की लालटेन जल रही है। झकाझक सफेद रोशनी से टुडाराम का चेहरा भी चमक रहा है।

चौधरी हरिपालसिंह उर्फ बच्चूसिंह पुत्रश्री टुडाराम, प्रधान, ग्राम बरौठ, जिला मथुरा की नाम-पट्टिका दरवाजे पर दो लम्बी कीलें गाड़कर लगा दी गई है। पुरानी किवाडो मे कील ठोकते समय दरारें आ गई हैं।

प्रधान जी का ट्यूबवैल सडक के सहारे वाले चक पर कुक्-कुका रहा है। पानी की ढाल के साथ खेतो में लक्ष्मी उतर रही है। सडक से लेकर नाले तक की सारी भूमि प्रधानजी ने अपने कब्जे मे कर ली है। बीच मे बचत की दस बीघा जमीन रह गई थी, जिसे चौधरी साहब ने प्रधान होते ही अपने कब्जे में कर लिया। अब किसी की यह हिम्मत भी नहीं कि उसकी ओर नजर भी उठा सके।

हरिपालसिंह को मिलिट्री मे भागे पाच साल हो गये। मिलिट्री मे तो

उन्होंने मुश्किल से दो साल नौकरी की थी। पहली साल उतरते ही सारा घर मिलिट्री-स्टोर बन गया था। बनियान, कमीज, मोजे, जूते और कम्बल घर के हर सदस्य के पास। अनारो भी पी०टी० शू पहनकर जंगल जाती, थ्री-एक्स-रम की बोतलें ऊपर वाले ताक में पड़ी रहतीं। टुंडाराम जब-तब मुह लगाकर गटागट कर जाते। मिलिट्री-स्टोर की कैवेण्डर छाप सिगरेट हुक्के के ऊपर रखकर पी जाती। चिलम भरने का झंझट कौन उठाये ? टुंडाराम की पत्नी अनारो मच्छरदानी लगाकर घर के बाहर ही रास्ते में सोती।

टुंडाराम को किसी ने यह भर दिया कि उसके बेटे को पाच खून करने का अधिकार है। दारोगा तो उससे कुछ कह नहीं सकता। अब क्या है। *टुंडाराम के दिन फिर गये।* *एक वक्त गजरभत और दूसरे वक्त छाछ के* बल पर बुढाता टुंडाराम गुड़ से बेझर की रोटी खाने लगा। अब उसकी भी गिनती चौधरियो में होगी—सोचकर उसका मन गुदगुदा गया। चेहरे पर अचानक ही हँसी फैल गई। अब वह पंचायतों में जाया करेगा। अब की बच्चू आये तो एक स्वाफा खरीदेगा, भवरसिंह मुखिया जी जैसा। बगैर स्वाफा के पच कैसा ? फिर लेगा वह एक-एक से बदला। इन ब्राह्मणों का तो काला मुह कराकर गधे पर बिठायेगा टुंडाराम। हरिपाल के जन्म की बात याद आते ही टुंडाराम की कनपटी जल उठी। मानो उसके दोनो गालो पर किसी ने गरम तवे लगा दिये हो। भुनभुना गया वह। साले पंडित—परमा पंडित ने हरिपाल का नाम रखने से भी मना कर दिया कि सवा रुपये और साग-पराठे मे कही नाम रखे जाते हैं। उसने स्वय ही रख लिया *था—हरिपालसिंह। पंडित भी तो ऐसा ही नाम रखता। नाम क्या है*—कैसे भी रख लो। फिर उसके नाम से तो अच्छा है ही। टुंडा भी कोई नाम है भला। वो तो उसके बेटे ने टुंडाराम कर दिया, वरना वह जिंदगी भर टुंडा ही रहता। पहली बार तो डाकिया भी अचकचा गया था, जब उसका पहला मनीआर्डर आया था। अब तो डाकिया टुंडाराम तो क्या, चौधरी टुंडाराम कहता है। मजाल है, उसके बेटे के पाच खून माफ है।

नौकरी लगने के एक साल के भीतर हरिपाल की शादी हो गई। ठीक पाच हजार तो नकद लिये—घडी, साइकिल, रेडियो और एक दुधारी भैंस

अलग से। टुडाराम ने तो कभी स्वप्न मे भी नही सोचा था। उसकी शादी अपनी बहन के बदले मे हुई थी और अब इस सपूत के कारण टुडाराम का घर भर गया। यह सोचकर उसकी आखे भर आती। भगवान बिहारी जी के मंदिर मे आते-जाते वह माथा झुका लेता। सब उसी की महिमा है।

गाव मे अफवाहे तो ऐसे उडती है, जैसे जरा-सी हवा मे पीपल के पत्ते। पन्नी ब्राह्मण की दुकान अफवाहों का केन्द्र है। पढे-लिखे लडके इसे आल इंडिया रेडियो कहते हैं और अनपढ 'रेडियो'। सुबह-सुबह पन्नी ने पता नही किससे कह दिया कि हरिपाल मिलिट्री से सामान चुराकर भाग आया है।

घर-घर चर्चा होने लगी। हुक्के के धुए के साथ निकलतीं अफवाहें यहा-वहा फैल गई। हरिपाल भी रात आ गया है। फिर तो यह सही भी हो सकता है। वह अभी तो गया था, कुछ दिनो पहले, दो महीने की छुट्टी काटकर अब एकाएक कैसे आ गया? इसका मतलब पन्नी सही कह रहा था। पन्नी को लोग कितना ही झूठा कह लें, वह पंडित है—असली पंडित, कान पर जनेऊ हमेशा चढाए रहता है—चाहे खाना हो क्यो न खा रहा हो।

हरिपाल ने साफ-साफ कह दिया—मिलिट्री की नौकरी अब पहले जैसी नहीं रही। जेल है—असली जेल। घर की आधी रोटी भली उससे तो। अब गाव मे रहूगा—नौकरी से मन भर गया है।

टुडा अचानक उदास रहने लगा है। बाहर खाट पर पडा रहता है—चुपचाप।

मच्छरदानी अब छत पर लगती है—हरिपाल और उसकी बीवी के पलग पर। अनारो बाहर रास्ते मे सोतीं है—रात-भर मच्छरो की वजह से नींद भी तो नही आती।

हरिपाल अचानक एक महीने पहले पता नही कहा चला गया। टुडा हर तीसरे-चौथे दिन मथुरा जाता है—थैला भर कर।

पन्नी ने आज फिर एक सुर्रा छोड दिया है, दिन निकलते ही कि—'हरिपाल को सजा हो गई है, अछनेरा के पास मे पडी डकैती मे वह भी पकड़ा गया है। कल रात मेरा साला आया था, वह बता रहा था। उसे

देखते ही हरिपाल ने मुह पीछे कर लिया था। हथकड़ी-बेड़ियों मे जकड़ा हरिपाल पुलिस के सिपाहियों के साथ कचहरी जा रहा था।

लोगो के चेहरे उतर गये सुनकर।

गाव मे जैसे ही यह वात फैली तो चर्चा का विषय वन गई। औरतों के समूह हरिपाल के बारे मे ठट्ठ मारकर डकैत-वृत्तांत सुन रहा था। लाला-राम की लम्बी फटेरे-सी बहू रस ले-लेकर एक-एक घटना सुना रही थी। आश्चर्य का महासागर हिलोरें ले रहा था। तेजसिंह की बहू ने बीच मे ही वात काटते हुए कहा—

"हाय! न्यई डारि लेतौ, म्वा गयो ए राजा वच्चूसीग के भत्तपुर मे। म्वा को डारि लेन दैतो। म्वा तौ अव ऊ रामराजु है। राम- राजु।"

तेजसिंह की बहु के अकाट्य तर्कों को सुन औरतें अवाक् रह गईं। सही कह रही है, भरतपुर मथुरा के पास तो है ही और वही की वह रहने वाली है।

टुडा अब किसी से वातें नही करता, किसी से भी नही। चुप-सा रहता है। दाढी वढ़कर वुरी लगने लगी है। माथे पर झुरियो ने अखंड राज्य कर लिया है। मकडी के जाले की तरह सारा चेहरा जाल मे बंध-सा गया है। अतीत की स्मृतिया एक-एक करके उसे बेचैन करती रहती हैं। अन्दर की कोठरी मे भुस की गध मे पडा टुडा करवट लेता है—सारा शरीर बेकार हो गया है—उसका। अव वह कही का भी नही रहा। हरिपाल ने उसे पहाड़ पर चढाकर धक्का दे दिया। वह मर-सा गया है। गाव मे मुह दिखाने लायक भी नहीं रहा, अव तो। लडामनी पर बंधे वैलो का पंजर लग गया है। खेतो मे खड़ी फसल को आवारा गायें चर रही हैं। टुडा ने वहुत दिनों से अपने खेतों की ओर देखा भी नही। एक-एक चिड़िया को उड़ाने वाला टुडा अब अनासक्त-सा हो गया है।

एक साल बाद हरिपाल गाव आया हैं। मूछें ऐंठादार वड़ी-वड़ी। तन पर कुर्ता-धोती भकाभक। पैरो मे जूती चर्र-मर्र करती हुई। तन्दुरुस्ती जरूर कुछ गिरी हुई है। आवाज मे कड़क भी शायद इसी कारण नही है।

हरिपाल को इस हालत मे देख गाव दंग रह गया। किसी को कुछ पूछने की भी हिम्मत नही हुई। सवको जिज्ञासाओं और प्रश्नाकुलताओं

पर पानी फिर गया। उसी ने स्वय बताया कि—वह बम्बई कमाने गया था और रुपये कमाकर लाया है—अब जमीन खरीदकर खेती करायेगा। हरिपाल ने बगैर किसी सकोच और लज्जा के कह दिया।

गाव के लोग चाहे मुंह पर न कहे, लेकिन बाद मे जरूर टिप्पणी करते है। हरिपाल की बात पर उन्हें विश्वास जमा ही नही। बम्बई तो गाव के ज्यादातर नाई भी जाते हैं, उन्होंने तो आज तक एक कूड भी जमीन नही खरीदी और हरिपाल एक साल मे ही···। कही-न-कही गड़बड़ जरूर है।

पन्नी की दुकान ने फिर एक खबर उछाली कि हरिपाल के यहा रात को डकैतो का गैंग आता है और···। हरिपाल पक्का डकैत हो गया है।

गाव परेशान है। पिछली साल अच्छी सरसो के बने पैसे से पुजारिन अपने को सेठ समझने लगी है। डकैती का डर सबसे ज्यादा उसी को है। गांव एक-एक बिलाद की जीभ निकालकर वह रात-दिन डकरा रही है। गांव के भेदिया से क्या छिपाया जा सकता है। जय हो बिहारी जी महाराज!

हरिपाल की जी-हुजूरी अचानक बढ गई। गाव मे उसके खिलाफ कोई कुछ नही कहता। टुडा को लोग अब फिर से चौपाल पर बुला-बुलाकर हुक्का पिलाते है। टुडा और उसकी बहू दुवारा खुश नजर आने लगे हैं। चेहरे की कलछौंही धीरे-धीरे मिट रही है। हरिपाल वाकई सुपात्र है, एक दम श्रवणकुमार। टुडा सोते हुए भी अचानक हँस पड़ता है।

हरिपाल ने खेडे पर पक्की ईंटों का कमरा बनवा लिया है। वही रहता है—रात-दिन। एक मातबर कटखना-झबरा कुत्ता लाया है साला शेर जैसा लगता है। असली शेर जैसा। सुना है आसपास के सभी खरगोशो को मारकर खा गया है। अब तो रात मे क्या दिन मे भी किसी की वहाँ जाने की हिम्मत नहीं होती, कोई जाकर मरेगा क्या—सीधी गरदन ही पकडता है, छाती पर पैर रखकर।

रात सुभाष सर्राफ के यहा डकैती पड गयी। सुभाष की भाभी ने पहचान लिया है—बिल्कुल हरिपाल था—टुडा का हरिपाल। पर मुडासा और मुह पर ढाठा बधा हुआ था। जब वह चीखी तो उल्टी बदूक दी थी—भैराकर उसकी छाती पर। लगते ही उसे होश नहीं रहा—चित गिर पड़ी थी। सिर भी फट गया है। अब होश आते ही हरिपाल का नाम लेकर

चीख रही है। 10-12 आदमियों को लेकर चढ़ आया था।

गांव मे सन्नाटा है। पुजारिन रात मे ही कही भाग गई। बाजार मे मुर्दनी छा रही है। बलराम वैद्य सुभाष की भाभी को हर घंटे बाद दवा दे रहे हैं।

पुलिस मे रपट लिखाओ—नामजद, जब पहचान ही लिया है तो फिर क्या बात है। मुखिया जी कह रहे है।

नामजद—यानी हरिपाल के नाम से, रहे-सहे और मर जायें। सुभाष ने मरी-सी आवाज मे कहा।

चौकीदार ने खबर दी और थानेदार आये। रपट लिखी, थानेदार ने कहा—किसी को पहचाना भी है ?

बिल्कुल नही। सुभाष ने कहा।

किसी पर शक ?

शक किस पर हो सकता है। गाव मे तो हमारी किसी से दुश्मनी भी नही है। कोई बाहर के डकैत थे—दरोगाजी।

सुभाष की भाभी हरिपाल का नाम लेकर अन्दर डकरा रही है, उसकी पीड़ा निरन्तर बढ़ रही है।

प्रधान जी के घर चाय पीकर थानेदार लौट गये।

रात रेडियो ने सूचना दी है कि अगले महीने प्रधानी के चुनाव हैं। सारा गाव गूज उठा। एक बार हरिपाल का प्रकरणफिर शांत पड गया। राजनीतिक पैंतरे लगातार तेज हो रहे हैं। सूनी चौपाल फिर भर उठी है। रात-दिन हुक्के की नै मे से निकलते धुए के साथ लोगों की चेतना प्रखर हो रही है। ग्यारह साल बाद चुनाव हो रहे हैं—कोई मजाल है क्या ?

नये-नये नामो की अफवाह। हर घर से एक आदमी पर्चा भरने को तैयार है। बाबू साईं भी पर्चा भर रहा है। जिन्दगी भीख मागते कटी और अब प्रधान जी होंगे। दिन निकले ही बाबू साईं ने अपनी एकमात्र बकरी बेच दी है—पर्चा भरने आज ही नौह जायेगा वह। नाले मे मल-मलकर नहाया है—आज। गजी का सफेद कुर्ता और धोती पहनी है—शायद पहली बार। पैरों में कुछ नही। कुर्ते की खस-खस की आवाज से बूढ़े चेहरे पर चमक आ रही है—रह-रहकर।

प० सुखराम भी पर्चा भरेंगे । सूखा जिसने जिंदगी भर टट्टी भी साफ नही की और अब प्रधान—। मर गये । आ गया रामराज !

गांव मे ऐसे-ऐसे नामों की अफवाहें उड रही हैं जिनके बारे मे कभी सोचा भी नही था ।

अन्याय हो गया, अन्याय ! जय हो गाधी बाबा की । हरिपाल भी पर्चा भर आया । हरिपाल डकैत ! ऍं ··ऽऽऽफिर तो हो गया गाव का बेड़ा-गरक ।

पर्चा भरने की तारीख निकल गई । पचास पर्चे भरे गये हैं । हर आदमी प्रधान बनना चाह रहा है । सभी की नजर मे गांव के आसपास पडी बचत के खेत लहलहा रहे हैं ।

रात-दिन पंचायतें । कनफूसी । बाबू साईं के कान मे तो थूक भर गया है । रात मे सोचते हुए कान खर्र-खर्र करता है । क्या करे बाबू साईं—गाव के ज्यादातर आदमी बोलते हुए थूक पटकते हैं और बातें नेहरू जी की तरह कान मे ही करेंगे । पॉलिटिक्स यही तो है—गाव का बच्चा-बच्चा कान मे बातें करना सीख गया है । बाबू साईं की कुआरी लड़की शहनाजिया रात-दिन घूम रही है । हँसती खिलखिलाती । गाव के लड़को ने प्रण कर लिया है—बाबू को जिताने का । गांव क्या दिल्ली का कनॉट प्लेस हो रहा है । बम्बई से लौटे नाई चौपाटी बता रहे हैं ।

कल होंगे—चुनाव । सुबह निकलते ही वोट चालू । पार्टी आ गयी । डिब्बे लेकर । एस० डी० एम० की जीप अभी चैकिंग करके गई है । पटवारी जी बिगड़े ब्याह के नाई की तरह चक्कर लगा रहे हैं । चौकीदार कल से ही लाल पगडी लगाकर घूम रहा है ।

धांय-धाय—। पड़ गई डकैती । भागो-भागो, कहा ? सारा गाव चीख रहा है । गोलियों के छर्रे दीवालों पर बिखर रहे हैं—छर्र-छर्र । चुनाव पार्टी के साथ आये सिपाही ठाठ से सो रहे हैं—ठर्रा पीकर, पंचायतघर मे ।

वोट हरिपाल को ! और जो नही देगा ।—धाय···। हरिपाल को—कौन है ये—कौन है ! आवाज तो रनसिग के लौडस्पीकर जैसी है । मैक बोल रहा है—मैक···। डरे हुए लोग कनफूसी कर रहे हैं ।

गांव डर गया है । कोई कुछ नही बोल रहा । सब उदास है । बाबू साईं की शहनजिया बीमार हो गई । चला नही जाता उस पर, अब । चेहरा जर्द पड गया है । उठते समय पेट मे पीड़ा होती है ।

हरिपाल जीत गये—भारी मतों से । अभी-अभी नौह से खबर आयी है ।

मन्दिर की चोटी पर चील बैठी है । पचायत-घर के पीछे गिद्ध किसी जानवर को नोच-नोंचकर खा रहे हैं ।

स्वप्नदंश

सर्द हवाएं वैसे तो कई दिन से चल रही है, परतु आज कुछ अधिक ही लग रही है। सुबह से शाम तक सूरज का कही पता नही चला। कई बार उसकी इच्छा हुई कि वह बादलों को फाड डाले और उसमे छिपे हुए आग के धधकते गोले को निकाल लाए, ताकि इस जानमार सर्दी से छुटकारा मिल सके। पूरे दिन कुहरा छाया रहा और पानी-सा टपकता रहा। सर्दी इतनी बढ चली कि शाम होते-होते पाव लाल पड गए। बार-बार हाथो को सहलाती तो थोडी देर को कुछ राहत अवश्य मिलती, लेकिन दुबारा थोडी-सी देर मे ही वही स्थिति। लगता जैसे सारा शरीर जड हो गया है, चेतना का कही नाम नही। जैसे-जैसे अधेरा बढता गया उसके साथ-साथ कलमुही सर्दी भी अपना शिकजा कसती रही। चारो ओर एक सन्नाटा-सा व्याप्त था, आकाश मे एक भी तारा दिखायी नही पड रहा था। बहुत देर वह खिडकी खोलकर आकाश को देखती रही कि शायद कही एकाध भूला-बिसरा तारा दिखायी पड जाए, जिसे बहुत देर तक देखती रहकर मन को कुछ सुकून मिल सके, लेकिन दूर-दूर तक कालिमा सब-कुछ अपने मे समा चुकी थी।

सडक के उस पार पार्क के चारो ओर दिखायी पडने वाले अशोक के पेड, जो उसे रोजाना बडे साफ दिखायी पडते थे और वह घटो उन्हे निनिमेष भाव से देखती रहती थी, आज कही दिखायी नही पड रहे थे। उन्हे भी अधेरा निगल गया था। पास वाले शर्मा अंकल के रोशनदान से जरूर कुछ प्रकाश छन-छनकर बाहर निकलने की असफल कोशिश कर रहा था जो बाहर आकर अधेरे के सामने घुटने टेक देता था। सडक पर एक

रिक्शा जा रहा था, घंटी बजाता हुआ, उसने सोचा कि रिक्शा उसी दरवाजे पर आकर रुके तो कितना अच्छा रहे। सुबह से पलग पर पडी है कुछ काम ही करे ताकि सिर का दर्द जो कई दिन से हो रहा है, कुछ तो हल्का हो सके। उसने सोचा कि मम्मी अभी चाय के लिए पूछेंगी तो वह आधा प्याला तो पी ही लेगी। प्रतीक्षा की लेकिन कही कुछ नही। खटाक से खिडकी बंद कर दी। लिहाफ को दोनों ओर से दाब कर लेट-सी गई। भयकर एकात और सर्द हवाए खिड़की के माध्यम से कमरे मे आ घुसी थी। आहट हुई, शायद मम्मी आ रही हो कुछ उठ-सी बैठी, कनखियो से दरवाजे की ओर देखा लेकिन कुछ नही, मम्मी तो भजन कर रही थी। मन मे एक अतिरिक्त-सी झुझलाहट हुई। पता नही, मम्मी को क्या हो गया है, जब देखो तभी भगवान वाले कमरे मे। या तो नौकरो के साथ घर का एक-एक काम डिक्टेट करती रहेगी अथवा भगवान की अर्दली मे हाजिर। इसके अलावा कभी यह नही हुआ कि दो-चार घड़ी पास आयें और पूछें कि बिटिया तुम्हें क्या हो गया है...तुम कैसे अकेली पडी हो...बत्ती कैसे बुझा रखी है—आज खाना क्यों नही खाया—।"

टेलिफोन की घंटी बजी—किर्र...किर्र...किर्र...। वह दुःखी मन से उठकर टेलिफोन के पास तक गई और रिसीवर उठाकर हेलो कहा ही था कि पापा का वही चिरपरिचित स्वर सुनाई दिया। क्षमा मागते से पापा कह रहे थे—बेटी, मैं आज रात को नही आ पाऊंगा, कुछ जरूरी काम है। वह थोड़ी देर लुटी-सी खड़ी रह गई, उसके हाथ से रिसीवर छूटते-छूटते बचा। धम्म से पास की कुर्सी पर सिर थाम कर बैठ गयी। थोडी बैठी रही और फिर उठकर अपने आप चली आई। पलग पर लेट कर लिहाफ पैरो तक सरका लिया। मन मे अशाति और बढ गई। उसने आज शाम से ही सोच रखा था कि वह पापा के साथ थोडा-सा खाना खायेगी और कॉफी पीकर थोडी देर तक ताश खेलेगी—जिससे सारे दिन की नीरसता दूर भाग जाय। परंतु अब निश्चित हो गया कि पापा आज नही ही आयेंगे। मम्मी से तो उसे इतनी भी आशा नही कि वह उसके साथ ताश भी खेल लें। हा, पापा होते तो वे तीनो मिलकर तीन-दो-पाच अवश्य खेल लेते।

किचिन की उठा-पटक से मालूम पड रहा था कि मम्मी को भगवान

के दरबार से छुट्टी मिल चुकी थी। खाना लगाकर मम्मी उससे भी पूछने आयीं परन्तु उसने बिना सोचे-समझे ही कह दिया—आज मुझे भूख नहीं है। पेट कुछ भारी-भारी सा हो रहा है। मम्मी चुपचाप चली गईं। उसे लगा कि आज पेट कुछ भारी-सा हो रहा है, एकदम झूठ। तीन साल हो गए पेट हल्का ही कब रहा है। तीन साल पूर्व जब उसने एम० ए० पास किया था तो वह बेहद प्रसन्न थी कि चलो एम० ए० की अन्तिम परीक्षा भी अच्छे अंकों से पास हो गई, अब क्या है—बस शादी और शादी के बाद—उसके मन में शादी का नाम आते ही कुछ दरक कर टूट-सा गया। मम्मी तो उसकी शादी बी० ए० में ही किए दे रही थीं, परंतु पापा ही तैयार नहीं हुए। तब उन्होंने कहा था—अपनी लाडो बेटी को एम० ए० कराऊंगा, पी-एच० डी० कराऊंगा, तब करूंगा शादी बड़ी धूम-धाम से। अभी से इसकी जिंदगी मैं अपने हाथों से खराब नहीं कर सकता। मम्मी ने बहुत समझाया था—लडकियों की क्या है, वे तो शादी के बाद भी पढती रहती है, पढने वालों की पढाई को कौन रोक सकता है, परंतु ऐसा सुशील एवं अच्छे परिवार का लड़का शायद ही फिर मिल पाए। पापा का पुरुष मन मम्मी के स्वर में छिपी नारी-व्यथा को नहीं आंक पाया—शायद जान-बूझकर भी। इसलिए एम० ए० में दाखिला दिलाकर पापा बेहद खुश हुए थे जैसे एक बहुत बडी विजय उन्हें मिल गई हो।

उसके एम० ए० करने के बाद ही पापा ने धीरे-धीरे शादी का सामान खरीदना शुरू कर दिया था। क्योंकि एकदम शादी का सामान खरीदने का मतलब है हाथी खरीदना और इतनी क्षमता उनकी थी भी नहीं—ईमानदार जो ठहरे। पापा जहां भी जाते वहां से कुछ-न-कुछ सामान पैक करा-कर जरूर लाते और वह सब सामान मम्मी के बेडरूम के बराबर वाली कोठरी में रखकर ताला लगा दिया जाता, ताकि उसका कोई प्रयोग न कर सके।

पी-एच० डी० में रजिस्ट्रेशन करा दिया गया। सुपरवाइजर पापा के बहुत अच्छे दोस्त हैं, इसलिए उस दिन खुद बधाई देने आए थे। बहुत खुश थे पापा कि अब उनकी बेटी डाक्टर बनेगी—वह नहीं बन पाए तो क्या बेटी ही सही और इसी खुशी में उन्होंने तब से ही डाक्टर बेटी कहना शुरू

है ? और पापा हैं कि उसे बच्चा समझ इसी तरह भ्रम का महल बनाते रहते है, जिसमे बैठ वह अपने को एकदम असहाय और अकेली पाती है। उसे लगता है कि वह इस महल मे अकेली बैठी है और चारो ओर साप घूम रहे है। जिनसे बच पाने का वह लाख उपक्रम करती है परतु असहाय हो कुछ कर नही पाती और साप है कि उसके सारे शरीर से लिपट गए हैं, उसके एक-एक अग को डस रहे हैं वह चीखती और चिल्लाती है— परतु कोई भी व्यक्ति इस आदर्श और भ्रम के महल मे घुस नही पाता, वह रोने लगी रोते-रोते तकिया गीला हो गया। वह उठी, सिर को एक बार झटका, चारो ओर भयातुर नजरो से देखा, कोई नही था। दीवार पर टगे हुए अपने ही चित्र को कातर नजरो से बहुत देर तक घूरती रही और घूरते जब सिर भन्ना-सा गया तो खिन्न मन से लाइट ऑफ कर दी और लेट गई। लेकिन निगोडी नीद का दूर-दूर तक कही पता नही था।

आज ही कहानी की एक पत्रिका आयी है, मुखपृष्ठ पर किसी सुदर लडकी का चित्र अकित है। वह बहुत देर तक वह उस अप्रतिम सौंदर्य को निहारती रही, देखती रही उस चित्र की सजीवता को—एकदम साकार होती छवि को। दूसरा पृष्ठ उलटने को उसकी इच्छा बहुत देर तक नही हुई। उसने वह चित्र चूमा और पत्रिका मेज पर उठाकर रख दी, यह सोचकर कि रात को अवश्य पढूगी। लेकिन रात थी कि उसे खाए जा रही थी। उसने एक बार सोचा भी कि पत्रिका को उठाकर पढे, कुछ तो समय पास होगा और मन हल्का होगा। परतु सिर-दर्द बढ़ गया था, इसलिए पढने की हिम्मत नही पडी।

सुबह हो गयी थी। रामजी गाय का दूध निकाल लाया था। वह पलग पर जगी पडी थी। उसकी इच्छा हुई कि ताजा दूध की एक कप चाय पीए, दो बार रमुजी को आवाज भी दी, दरवाजा बद होने के कारण शायद वह सुन न सका। वह झुझला-सी उठी कि मम्मी को भी तो चिंता होनी चाहिए कि दिन निकल आया है और वह अभी तक सोयी पडी है, रात खाना भी नही खाया था, क्या हो गया है उसे, परतु मम्मी उसके कमरे मे आ ही नही सकती, ऐसी लक्ष्मण रेखा-सी खिची है, मानो सुबह-सुबह उसका मुह देखने से अपशकुन हो जाएगा। पापा होते तो वगैर उसके चाय ही न

पीते, सीधे उसी के कमरे मे आकर पास पड़ी कुर्सी पर बैठ जाते और तरह-तरह की बातें करते रहते—पापा के प्रति उसके मन मे एक क्षण को क्रोध की जगह अतिरिक्त सहानुभूति उत्पन्न हो गई थी।

मम्मी के इस बेरुखे व्यवहार के बारे में पापा ने एक दिन पूछा भी था तो मम्मी ने बगैर उसका ध्यान किये ही बडी निर्दयता के साथ उत्तर दिया था—यह उम्र इसके यहां रहने की है क्या ? अब तक तो······। मैं भी तो लडकी थी, चौदह साल की उम्र मे तो यह पैदा ही हो गई थी। अब कौन कहे जमाने की बलिहारी है—बूढ़ी होने पर तो शादी होती है।

पापा झुझला उठे थे—तुम्हारा तो दिमाग खराब हो गया है। तुम अपनी होड़ मेरी लाडो बेटी से कर रही हो, यह तो डाक्टर है, डाक्टर और तुम अपनी शक्ल तो देखो।

मम्मी कुछ रुआसी-सी होकर किचिन मे चली गई थी और पापा उसके दिल के फफोलों पर मरहम-पट्टी करते रहे थे—पढ़ाई-लिखाई और उसके स्वास्थ्य के बारे मे पूछ-पूछकर। परंतु वह सब कुछ समझते हुए भी चुप थी।

वह पलंग से उठी, सिर चकरा रहा था। कमर मे दर्द शायद एक करवट लेटे-लेटे हो गया था, मुह मे साबुन सा घुल गया था। सीधी बाथरूम मे उकड़ू बन उससे बैठा न गया, बडी मुश्किल से वह बैठ पाई—कमर का दर्द और बढ गया था, वह चुपचाप चली आयी। मम्मी से कुछ नही कहा, हालाकि बाथरूम किचिन के बराबर मे ही था। बरामदे मे रमुजी मिल गया—एक प्याला अच्छी-सी चाय को कहकर वह पुनः पलग पर आकर बैठ गई। उसे लगा कि वह वास्तव मे बीमार है। उसे बुखार आ गया है। सारे शरीर मे जोर का दर्द है—शरीर का पोर-पोर दुख रहा है। उसने अपना हाथ उठाकर माथे पर, गले पर और पेट पर रखा, कुछ गरमाहट-सी महसूस हुई। जोर की सास भी निकालकर उसने देखा तो वह भी कुछ गरम थी। बैठे-बैठे थोड़ी देर मे ही सिर चकरा गया था, तकिये को दुहराकर पलंग की पीठ के सहारे अधलेटी-सी हो गई। पास ही मेज पर रखे हुए शीशे को उठाया, देखा चेहरे पर झुर्रियां-सी पड गई है। आखो के किनारे-किनारे कुछ खाई-सी बन गई हो, चेहरे पर जर्द पीलापन

मा उतर आया है, सुंदर चमकीली बड़ी-बड़ी आंखें कुछ-कुछ बुझ-सी गई हैं। जब वह एम० ए० में थी तो उसके चेहरे पर अप्रतिम लावण्य था, वह धीरे-धीरे उम्र के ढलान के साथ-साथ स्वतः ही नष्ट होता जा रहा है। आज तो उसका चेहरा एकदम कुरूप लग रहा है। उसे विश्वास नहीं हो पा रहा था कि वह उसी का चेहरा है—शीशे पर ही क्रोध हो आया और उठाकर बेचारे को मेज पर दे मारा।

रमुजी चाय ले आया था। चाय की पहली चुस्की में ही उसे लगा कि इसमें कुछ भी नहीं है—एकदम कड़वी-सी बेस्वाद चाय। मन मारकर पीना भी शुरू किया, लेकिन उसे लगा कि यदि उसने और सिप किया तो उसे निश्चय ही उल्टी हो जायेगी। चाय उठाकर मेज पर रख दी। अचानक ध्यान आया कि बड़े लाड़-प्यार से पाले गुलाब के पौधों को देखे कि ठंड में वे कैसे लग रहे हैं। खिड़की खोली, कुहरा एकदम हवा के साथ खिड़की में से कमरे में भर गया। बाहर की सर्द हवाओं ने कमरे में अपना गढ़ जमा लिया। नीचे को गर्दन झुकाकर झांका तो देखा—गुलाब मुरझा से रहे हैं। सुबह-सुबह रोजाना चमक-दमक कर मुस्कराने वाले विभिन्न प्रकार के गुलाब के फूल जिन्हें खिलते देखकर वह शाम तक की मुस्कराहट प्राप्त करती थी, अचानक मुरझा गये थे। उसके मन का कोना-कोना इस अप्रत्याशित दुर्घटना से घायल हो गया। उसके मन को मानो मुरझाये हुए गुलाब के हजारों कांटों ने छलनी बना दिया हो। वह मन मसोसकर रह गई। ठंडी हवा और कुहरे को अन्दर आते देख खिड़की झटाक से बंद कर दी। गुलाब की इस भयंकर स्थिति पर उसे रोना आया। मन और भी खिन्न हो गया।

दरवाजे की घंटी बजी। रमुजी दौड़ा गया। थोड़ी देर में किसी से बातें कर वापिस लौट आया। उसने जोर की आवाज में रमुजी से पूछा कि कौन था और क्या कह रहा था। रमुजी ने बताया कि "पापा कल आयेंगे और बड़े बाबूजी के द्वारा फीरोजाबाद से एक कांच का ड्रेसिंग-टेबुल भिजवाया है। सुनकर वह धक् से रह गई—क्या कहती! और कहती भी तो किससे? चलो एक सामान का और इजाफा हुआ।

रमुजी ने ड्रेसिंग-टेबुल मम्मी को दे दिया और मम्मी ने बिना देखे ही

उसे कोठरी में बंद कर ऊपर से वही पुराना ताला जड़ दिया। और जैसे कोई घटना अभी घटी ही न हो, पुन. काम करने लग गई। परन्तु वह बहुत देर तक इस घटना को आगे-पीछे से सोचती रही—पापा कल आयेंगे··· फीरोजाबाद से काच का ड्रेसिंग टेबुल भिजवाया है······किसके लिए··· क्या होगा इसका··· उसकी शादी के लिये या कोठरी में बंद करने के लिए। उसे लगा कि वह भी तो एक फालतू सामान ही है, जो हमेशा एक कोठरी में बंद रहती है, न कहीं जा सकती है और न उसकी किसी को कोई आवश्यकता है। जो भी आता है ताला देखकर लौट जाता है। मम्मी का कहना है कि दरवाजा खुला रहने से सामान पर धूल जम जायेगी। इसी-लिए मम्मी की मर्जी के अनुसार हमेशा दरवाजा बंद रहता है क्योंकि शादी के दिन तक उसे नया जो बना रहना है।

अन्यमनस्क हो वह पलंग पर दुबारा लेट गई, बाहर की सर्दी मन की सर्द और आहत दीवार पर एक और पर्त जड़ गई। आखों में अर्से से रुके आंसू छलछला आये।

वदलाव

कई साल बाद अचानक गाव आने का कार्यक्रम वना। गाव मे बाबा, काका और मा रहती हैं। थोडी-सी जमीन के मालिक, लेकिन मोह ऐसा कि मानो सारा गाव इन्ही का है। जब भी शहर आने को कहा, घर मे मुर्दनी छा जाती। एक अन्तहीन चुप्पी। जिसका अर्थ स्वरो मे नही, मन मे गूजता था—पुरखो की जमीन को छोडकर शहर जाना कौन अच्छी बात है ? अपना घर, अपने खेत, अपना परिवेश और सभी तो अपने हैं यहा, शहर मे आकर बेगानो की तरह रहना क्या अब इस उम्र मे अच्छा लगेगा ? जिस जमीन मे पैदा हुए वही मिट्टी सिमटे—भगवान् से यही कामना है।

बस, गाव के पास सडक पर रुकी। झटपट सामान उठाकर मैं लम्बी और मुर्दा सडक पर उतर आया था। खडड-खडड़ करती बस डीजल जला धुआ छोडती चल दी थी—धीरे-धीरे। गाव के पास खड़े होकर मैंने लम्बी और खुशनुमा सास ली। दोनो नथुने छोटे गुब्बारे की मानिन्द फूले और पिचक गये। सडक पर खड़े होकर पीछे की ओर देखा, हरा-भरा जगल और उसमे से दिखाई पड़ती जमुनाई धारा। ठीक सामने गाव। 6-7 हजार की आबादी वाला बडा गांव। गाव के पछाई ओर प्राइमरी स्कूल, जहा अब पुलिस-चौकी खुल गई है और दक्षिणी ओर जूनियर हाई स्कूल, जिसकी आमदनी प्रबन्धक की जीवनाधार है। इसी स्कूल के साथ-साथ खुले अन्य डिग्री कालेज हो गये, लेकिन इस पर गाव की राजनीति की इतनी अटूट कृपा रही कि तरक्की करना तो दूर, जब-तब इसे बद और होना पड़ा।

मुख्य सड़क से गाव को मिलाती एक मील लम्बी सड़क पिछले चुनावों के समय सत्ताधारी दल के एम०एल०ए० ने बनवानी शुरू की थी। चुनाव हुए, एम०एल०ए० हार गये, परिणामत. सड़क भी अधूरी रह गयी। बगैर कोलतार के गिट्टिया रात-बिरात हाथ-पैर और तोडती है। सडक पर लगे फर्लांग के पत्थर घरो मे भैंस बाधने के काम आ रहे हैं। गांव के पास लगा मील का पत्थर चूना-पुता तो था ही, किसी ने गलती से पानी चढा दिया, तब से लेकर अब तक वह औरतो का आराध्यस्थल हो गया है। हर सोमवार को भीड लग जाती है—श्रद्धालुओं की।

इस सडक से गाव वैसा ही दिखाई पड़ रहा था जैसा पहले लगता था। वही पुराने कच्चे घर और छप्पर। आबादी की निरन्तर बढ़ोतरी के साथ गाव अभी बाहर को नही निकल पाया जैसे शहर दिन-रात निकल रहे हैं। गाव निकले भी कैसे, लोग जो निकल रहे हैं।

सडक के इस ओर से निकलकर दूसरी ओर के झुडो मे खरगोश खलबली मचा गया। झुडो पर बैठी चिडिया ऐसे चीख उठी मानो झुडों को हिलाकर किसी ने उनके अस्तित्व को चुनौती दी हो।

घर के बाहर छप्पर मे बाबा बैठे थे—झुककर प्रणाम किया। बाबा ने सिर्फ मेरे सिर पर हाथ भर रख दिया था, उनके चेहरे की बूढी-झुर्रीदार पोपली मुस्कान पता नही कहा चली गई? पहले जिस आशीर्वादी मुद्रा मे बाबा मुस्कराते और बतियाते थे, पता नही उसे कौन चुरा ले गया। मैं चुप खड़ा रहा। बाबा इस स्थिति तक कैसे पहुचे, खोद-खोदकर बातें करने वाला आदमी जब एकदम शाति-मुद्रा अपना ले, तो बुरा तो लगता ही है। ऐसा कुछ भी तो मेरी जानकारी मे नही है जिसका परिणाम बाबा की वीतरागी चुप्पी हो।

बैठ जाओ!—बाबा ने मेरा ध्यान भग कर शायद अनमनेपन से कहा। मैं बैठ गया लेकिन बाबा चुप ही रहे। पोपला मुह लगातार चलता रहा, लेकिन ऐसा कुछ नही निकल रहा था, जिसे मैं समझ पाता। बाबा के सामने मैं पहली बार ऐसे बैठा हू जैसे कोई दो अपरिचित आदमी रेल मे आमने-सामने बैठे हों।

काका कहा है?—मैंने एकाग्रता भग करते हुए बाबा से पूछा।

बाबा ने मेरी ओर बुझी आंखों को चौड़ाकर देखा। सफेद भवों और बरौनियो मे ढकी काली आखें—जिनमें बीच मे सफेद पारा-सा बन गया है, मेरी ओर निर्निमेष चौडी होती जा रही थी। मै काप-सा उठा। सफेद ललिहाई मूछो से धीमा स्वर गूजा—जहा सारा गाव है।

कहा ?

लेवी पर।

लेवी पर अभी तक ! अभी गेहू नही बिके ? खलिहान तो बहुत पहले उठ गया था, काका की चिट्ठी गई थी।—मैने आश्चर्य में डूबकर कहा।

खलिहान उठने से क्या होता है, जब तक खलिहान का माल बिक नही जाता। किसान पूरी साल इसी फसल पर निर्भर रहता है और वही धोखा दे रही है ! बाबा ने बोलना शुरू कर दिया था। उनका स्वर बहुत धीमा था, जैसे कुए से निकालकर लाया आदमी धीमा बोलता है। बाबा ने पैर खाट से नीचे कर लिये थे। टटोलकर लाठी हाथ मे ले ली। चार बीसी अस्सी से ज्यादा उम्र हो गयी बेटा, लेकिन ऐसा जमाना नही देखा। अब आखें कमजोर हो चली हैं, रात मे तो कुछ दिखाई ही नही देता। परा-सरतू हो गया हू। बहुत कष्ट होता है। अकेला महेन्द्र क्या-क्या करे ? घर मे कोई बच्चा भी तो नही है। एक तुम थे, सो गाव ही छोड़ दिया। कितनी सालो मे आये हो ? बिल्कुल भी याद नही आती। ऐसा क्या शहर। थोड़ी देर रुककर फिर बोले—तुम्ही क्या सारा गाव ही उजड़ रहा है। बच्चा चलने लायक हुआ नही कि भागा शहर। पता नही क्या जमाना आ गया है ? बाबा का सिर काप रहा था और हाथ मे लगी लाठी धीरे-धीरे हिल रही थी। सारा गाव जब शहर चला जायेगा, तब गाव का क्या होगा ? शहर मे ही कौन मेवा-पकवान धरे हैं, रोटी तो गांव मे मिलती ही है। लेकिन अब सबको सफेद कपडे, साफ शरीर और आराम चाहिए—भागो शहर भागो'''।' बाबा का गला भर्रा गया था। कुछ देर रुक गये बाबा। उठने की कोशिश की और फिर बैठ गये।

चिलम भरकर दोगे क्या, सुबह से एक भी नही पी।—निरीह से स्वर में कहा।

पास ही सुलग रहे कण्डो से मैंने चिलम भरकर दे दी। कांपते हाथो

मे हुक्के की नाल थामे, बाबा धीरे-धीरे पी रहे थे। चिलम अभी सुलगी नही थी, इसलिए धुधुआ रही थी। बाबा हुक्का पीने मे तल्लीन से हो गये थे। मैं उठकर अन्दर चला गया।

मा बैठी थी चुपचाप देहरी पर ही। मुझे देखकर उसकी आखें चमक उठी। उठ बैठी—जैसे दौडकर मुझे गले लगाना चाह रही हो। मैं ठगा-सा खड़ा रह गया। कुछ क्षण बाद मैं जैसे ही सभला, जैसे ही झुकने को हुआ, मा ने बीच मे ही रोककर दोनो हाथो मे भीच लिया। मा की आखे बह चली—आखों से टपकती खारी-स्नेहिल बूदों से मेरा चेहरा नहा उठा।

बहुत दिनो बाद मा से मिलना हुआ है, जाहिर है इकलौते बेटे की मा को इससे बडी खुशी और क्या हो सकती है। मा का लाडला बेटा। घर मे इकलौते बेटे के प्रति वैसे भी ज्यादा लाड होता है और उसमे भी लडका बाहर रहे और कई वर्ष मे आये तो सारा घर आत्मीयता के अथाह समुद्र में लहलहा उठता है।

मा अन्दर जाकर एक लोटे पानी में चीनी घोल लायी थी। पूरा लोटा मुझे पकडा दिया—ले, पानी पी ले। गर्मी मे आया है।

बहू-बच्चों को क्यो नही लाया? अब तो छुट्टिया चल रही है?—पखा झलते मा ने पूछा।

पढाई की वजह से। यहा वे पढ नही पाते। पूरे दिन खेलते।—मैंने झूठ बोलते हुए कहा। मा को असलियत बता देता कि उनकी लाड़ली बहू गाव आना नही चाहती, वह गाव को गवारो और मूर्खों का अड्डा मानती है, तो मा कहती तो कुछ नही, लेकिन बहुत दिनो के लिए उदास हो जाती। पढा-लिखा आदमी कितनी अच्छी तरह झूठ बोल लेता है, मुझे अपनी ही झूठ पर शर्मिन्दगी का अनुभव हुआ।

वैसे सब ठीक तो है?

बहू मेरी कभी याद नही करती—क्या? कब से नही देखी। एक ही तो बहू और वह भी न मिले तो……। मा अपना भरा चेहरा न दिखाने के उपक्रम में इधर-उधर देखने लगी थी। बहुत देर तक वह कुछ नही बोली। उठकर अन्दर गई और अपना मुह धोकर रसोई मे लग गई।

मा का असीम स्नेह पत्नी नही समझ पाती। वह समझती है कि अन-

पढ़ मा क्या स्नेह कर सकती है। मानो स्नेह पढ़े-लिखे लोगों की धरोहर है। पिछले कई वर्षों से मैं उसे यहां लाने के लिए बाध्य करता रहा हूं, लेकिन कहीं कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। मुझे अकेला देखकर मा को जितनी खुशी होती है, उससे अधिक दु ख होता है। दु ख को वह छिपा लेती है, और खुशी को बेहिसाब प्रकट करती रहती है।

खाना खाकर मैं सो गया था। रात भर की थकान जो थी। दोपहर बाद जब मैं उठा तो देखा—मा खाना खा रही थी।

इतनी देर से खा रही हो, मां?

हां।

क्यों?

तुम्हारे काका को खाना देने गयी थी। एक मील जाना-आना भरी दुपहरी में। इसीलिए देर हो जाती है।

अभी नम्बर नहीं आया?

अभी कहां! अभी तो कई दिन लगेंगे। एक सप्ताह पूरा हो गया अब तक तो बोरिया भी नहीं, आयी। पता नहीं कब बोरी आये और कब गेहू बिकें। ऐसा तो पहली बार हो रहा है। तुम्हारे काका को तुम्हारे आने की खबर दी तो बेहद खुश हुए। उन्होंने तुम्हें वहीं बुलाया है। वे यहीं आ जायें तो आधे गेहू इधर-उधर हो जायें। इसलिए मजबूरी में वहां रहना पड़ रहा है। पिछले दिनों मलेरिया हो गया था। शरीर एकदम कमजोर हो गया है। ऐसी हालत में धूप-ताप में वहां जल रहे हैं।

खाना खाकर मा पास में आकर बैठ गयी, मेरे हाथ से पंखा ले लिया।—ला मुझे दे, तुझे कहा है आदत, अब। बिजली के पंखों में रहकर गाव में रहना कितना मुश्किल हो जाता है।

गाव में बिजली कब आती है? मैंने पूछा।

गाव में बिजली। बस लट्ठे और तार ही बिजली है। जब काम न हो तब आती है। पूरे बैसाख थ्रेसर के भरोसे बैठे रहे, कि कब बिजली आये और कब गेहू निकालें। आखिर किराये का ट्रैक्टर लाकर गेहू से चार दाने निकलवाये हैं। और अब इन्हें कोई लेने वाला नहीं। तू अच्छा रहा, पढ़-लिख गया। वरना पूरी जिंदगी यही रड़रोबने रहते। मा ने मेरे माथे

पर आये पसीने को पोछते हुए कहा।

तुम्हे मालूम है, करुआ ने ट्रैक्टर ले लिया है?

कौन करुआ?

वही जो तुम्हारे साथ पढा करता था।

कैसे?

इस गाव मे वे ही मजे मे हैं, जो सर्वगुण-सम्पन्न है। चोरी-डकैती मे कमाये माल से जमीन खरीद ली और अब 12 साल की बहन बेचकर पता नही कहा से पुराना ट्रैक्टर ले आया हैं। मा के चेहरे पर करुआ की बहन का जिंदगी भर का दु ख उभर आया था।

गाव मे किसी ने कुछ नही कहा। मैंने आश्चर्य व्यक्त करते हुए पूछा।

गाव। गाव मे. अब कौन कहने वाला है? सब अपने स्वार्थों मे डूबे है। कोई किसी की परवाह नहीं करता। अब वह पहले जैसा गांव नही रह गया है। अब कोई किसी की शरम नही करता। पता नही इतनी बेशरमाई इसी गाव मे है अथवा और दूसरी जगहों में भी। रामलाल की चम्पा सब चीज-बस्त लेकर भाग गई। मेहमान आये तो जूता लेकर खडी हो गयी। गाव की इस स्थिति को लेकर मा इतनी चिन्तित थी, मानो सारे गाव की नैतिकता का ठेका उन्ही पर है।

मा की चिन्ताए बहुत है। अपनी चिन्ता ही इतनी हैं, ऊपर से सारे गाव की और ओढ़ रखी है। अकेला आदमी इधर-उधर सोचने भी लगता है। मा घर मे किससे बातें करे। बाबा से बोलती नही, काका घर मे रहते नही, अतः आस-पड़ोस भी उनका घर-परिवार बन गया है।

मा को दिन मे नीद नही आती। सारे दिन लगातार काम करके भी मा थकती नही है, अभी। मैंने सोने को कहा तो बोली—नीद ऐसी गर्मी मे कहा आती है। आखे लगी कि पसीने मे सराबोर। और फिर तुम कौन रोज-रोज आते हो। कितने सालो मे तो आये हो। मा की आखो मे कई सालो का एक-एक दिन और उसका एक-एक क्षण उभर आया—तमाम अकेलेपन के साथ। मा की आखो से ऐसा लगा, मानो वे मेरे आने की प्रतीक्षा कितनी बेसब्री के साथ करती रही थी अब तक।

शाम को लेवी पर गया। गेहू के अम्बार। इधर-उधर गेहूं के अन-

गिनत पहाड़ । जीव-जन्तु कुतर रहे हैं गेहूं के दाने को, जैसे सत्ताधारी दल का एम०एल०ए० कानून को कुतरता है निर्द्वन्द्व होकर । काटे के पास मे कर्मचारियो का लगा टैण्ट । इधर-उधर हुक्का-बीड़ी पीते गाव के लोग । काका अपने गेहुओ के ढेर के पास चुपचाप बैठे थे—हाथ मे बीड़ी सुलग रही थी । सिर पर अगोछा डाले, शायद कुछ सोच रहे थे । मेरे जूतो की आवाज से चौक से पड़े और कई दिन से बगैर बनी दाढ़ी के काले सफेद बालो के बीच से कुछ अस्फुट-सा गूज उठा । अगोछा सिर से उतार कर हाथ मे ले लिया । मैने पास मे जाकर प्रणाम किया और चुपचाप बैठ गया ।

कैसे हो ? चुप्पी को खडित करते हुए उन्होने कहा ।

ठीक हू । गेहू के दाने हथेलियो मे इधर-उधर करते हुए मैंने कहा ।

बच्चे राजी-खुशी ?

सब ठीक है ।

बहू को ले आते । तुम्हारी मा से मिल लेती । बहुत याद करती है । कई सालो मे तो तुम ही आये हो और वह तो⋯ऐसी भी क्या⋯। काका को माथे की झुरिया और गहरा गईं । हाथ की बुझी बीडी को उन्होंने पुनः सुलगा लिया ।

मैं कुछ भी नही बोला । कुछ उत्तर नही दिया । उत्तर था भी क्या ? जो उत्तर है भी उसे काका अच्छी तरह जानते है । बार-बार झूठ बोलने का क्या अर्थ ? मा के सामने ही कैसी चिकनी झूठ बोली थी—फिर भी वह कुछ नही बोली—सब कुछ समझ-बूझकर के भी । मा जानती है—बहू क्यो नही आयी । काका भी—लेकिन फिर भी यह प्रश्न आवश्यक-सा है, पूछकर न उन्हे बुरा लगता और न उत्तर देकर मुझे । इसीलिए मैं बगैर यह सोचे कि मा-बाप से क्या छिपाया जाय, रटी-रटाई मुद्रा मे कह जाता हू और काका-मा इस तरह सुन लेते जैसे मैं सही कह रहा हू ।

काका इस समय किसी द्वन्द्व मे डूब-उतरा रहे हैं । एक ही बीड़ी को चार बार सुलगा चुके हैं ।

इस तरह कब तक यहा पड़े रहोगे, काका ?—मैंने अचानक पूछा ।

जब तक दम मे दम है ।

काका का उत्तर निराशा-भरा था, सुनकर सुन्न-सा हो गया। काका इतने निराश पहले तो कभी नही हुए थे, आज पहली बार उन्हे इस हालत मे देखा है। मैं उनके चेहरे के उतरते-चढते भावो को देखता रहा—अपलक। काका कुछ कहना चाह रहे थे, फिर पता नही क्यो नही, कह पा रहे थे? ठूठ फेंककर दूसरी बीडी सुलगा ली। बीडी के कश के साथ चुपचाप आँखें चमक उठती।

काका, इन कर्मचारी लोगो से बातें करू, शायद कुछ समाधान निकले।

निकल गया समाधान। बहुत कहकर देख लिया है। छंगा मास्टर था न, जो तुम्हारे साथ पढ़ा था, वह आज गाव मे नये-नये लड़को का नेता है, उसे यह सब बर्दाश्त नही हुआ, अतः वह लड बैठा और उसी दिन गिरफ्तार हो गया। पुलिस आरोप लगा रही है—सरकारी कर्मचारियों के काम मे व्यवधान डाला और मारपीट की धमकी दी। उसके साथ दस लडके और गिरफ्तार हुए। गाव में चू तक नही हुई। ऐसे लोग है, अब गाव मे। कर्मचारियों ने ही अपनी बदली दूसरी जगह करा ली, उन्हे डर था कही गाव वाले मारे न। उन्हें क्या पता यहा शिखण्डी बसते है। ऐसा तुमने कहीं न सुना होगा—बेबात गाव के लोग पकडे जायें और कुछ न हो। हमारे समय मे इसी गाव मे थानेदार ने एक रिश्तेदार से अनकहनी कह दी, यही मारा था थानेदार को। चिमटे से मारी मूछे उखाड ली थी और गर्म तवों से सिकाई की कि शाम तक मरा निकला। साथ मे आया एक सिपाही भाग गया था और दूसरा नीम के पेड से बाध कर मारा था। अब वह जमाना कहा है? गाव पौरुषहीन हो गया है। गीदड भी बगल मे आवाज दे दे तो घरों में घुस जाते है। सारा गाव डरपोक-सा हो गया है लेकिन अपने स्वार्थों मे अग्रणी। लाला बनिया बेधडक सस्ते दामो पर गेहूं खरीदकर यहीं बेच रहा है। गरीब आदमी क्या करे—कही तो बेचे, उसे तो दाम चाहिए। और जो उसे नही बेच रहे—वे भूखे-प्यासे पडे है। एक सप्ताह हो गया, कहते है—बोरी नही है। आग लग गई—कहा गईं बोरी···। काका का स्वर अब धीरे-धीरे तेज हो गया था। बोरी भी आ जायें तब भी सरकारी रेट है एक-सौ बावन और लेंगे एक-सौ अडतालीस, चार रुपया बोरी की खुली लूट। कुछ कहो तो अच्छे गेहू को भी नम्बर

दो मे लेगे । इसलिए सब चुप रहते है । कोई कुछ नही कहता । छगा के साथ सारा गाव हो लेता तो यह नौबत ही नही आती ।

काका की बातो मे अपनी पीडा के साथ छगासिह के पकडे जाने की पीडा भी झलक रही थी । काका जिन्दगी भर ईमानदार रहे और कभी भी झठ के सामने झुके नही, लेकिन इस बार उन्हे क्या हुआ कि सत्य के लिए लड रहे छगासिह का साथ उन्होने नही दिया । शायद अब वे भी दुनिया के साथ समझदार हो गए है । काका समझ गए है कि अब अकेला चना भाड नही फोड सकता । अकेले चाहे छगासिह हो अथवा कोई और कोई कुछ नही कर सकता । गाव मे एकसूत्रता आवश्यक है और जब तक वह नही है, तब तक छगासिह जैसे ईमानदार समाजसेवी जेल जाते रहेगे और लाला-बनिया जैसे गाव के लोग सरकारी कर्मचारियो की मिली-भगत से माल ऐठते रहेगे । काका की चुप्पी का यही रहस्य है । वैसे काका की बातो ने लग यही रहा है कि उनमे आग अब भी बाकी है, लेकिन उसका उपयोग नही हो पा रहा ।

शाम हो गयी थी । टैण्ट मे से हँसी-मजाक और कभी-कभी अट्टहास बाहर के शान्त और उदास वातावरण को चीरकर निकल जाता । काका ने बताया कि लूट के माल से शराब पी जा रही है । हम परेशान है. हमारा गेहू सामने पडा सूख रहा है, लेकिन इन्हे चिन्ता नही है । माल उडा रहे है—बेशर्म कही के । कभी-कभी लगता है···लगता है कि···कुछ नही । छगा मास्टर जेल मे है । उग्र और आग की मानिन्द चमकता चेहरा अचानक बुझ जाता, आखे कही और देखने लगती । काका बीडी निकालते और पीने लगते ।

अभी तो रुकोगे ?

नही, सुबह जाऊगा । घर पर बच्चे अकेले है ।

अच्छा, चिट्ठी डालते रहना । यहा की चिन्ता मत करना । यहा तो ऐसे ही चलता रहेगा । जिन्दगी के पचास वर्ष ऐसे ही गुजर गये, बाद बाकी भी यूही गुजर जायेगी । यदि यही हाल रहा तो गाव नरक बन जायेगा—एक दिन । तुम जाओ, मजे मे रहना ।

विदा करते समय काका की आखे भीग उठी । जल्दी-जल्दी पलकें

झपकाकर वे संयत हुए और मेरे सिर, पीठ पर हाथ फेर कर विदा किया। पचास वर्ष की जिन्दगी ने जो गंभीरता दी थी, वह सारी मेरे पर उडेल दी। मैं चुपचाप चला आया। एक बार पीछे फिरकर देखा, काका खडे थे—बीड़ी का ठूठ उगलियों में कैद हो उन्हे जला रहा था।

बाबा छप्पर मे अकेले पडे रहते। कोई हुक्का-पानी की भी पूछने-वाला नही। घर मे छोटा बालक है नही, जो सेवा कर सके और मुहल्ले के लेवी पर। गाव मे किसी को भी फुरसत नही है। हर आदमी व्यस्त है, जैसे घर-घर लड़की की शादी हो।

बाबा के हाथ मे पहली बार माला देखी है। पिछली बार जब आया था, तब तो घर में रहकर बैल-भैंसों की सानी-पानी कर दिया करते थे। वक्त की दुधारी मार ने बाबा को अशक्त कर पराधीन बना दिया। ऐसा आदमी सिवाय माला के और क्या ले सकता है, हाथ मे। बैठे-ठाले बाबा माला फेरते रहते।

मेरे पैरो की आहट सुनकर तीव्र गति से चलती माला रुक-सी गयी। पोपला मुह खुला रह गया। कौन···! बाबा ने चमककर पूछा। बुढापे मे व्यक्ति खुद को सर्वे-सर्वा मान बैठता है, जबकि घर के अन्य सदस्य उसे बेकार मानते हैं। इस विरोधाभासमयी जिन्दगी मे बाबा जैसे अनगिनत बूढ़े उपेक्षित और तिरस्कारयुक्त जिन्दगी जीने को विवश है। बाबा का पूछना साधिकार था, जवानी के दिनो से भी अधिक गर्वीला स्वर।

कोई नही।

अच्छा-अच्छा, तुम हो। आओ बेटा !—बाबा का स्वर मिठा गया था अचानक।

पास पडी खाट पर मैं बैठ गया था। बैठते ही बाबा ने हुक्का भरने को कहा।

लम्बी-लम्बी कश लेकर बाबा हुक्का सुलगा रहे थे। लम्बे समय तक कुड़कता हुक्का नगाडे की आवाज कर रहा था। थोडा-सा धुआं सुनहरी मूछो से छनकर निकलता। हुक्का पीते समय बाबा की सम्पूर्ण देह गुदगुदी हो गयी थी।

कलियुग का जो वर्णन गुसाईंजी ने रामायण मे किया है—ठीक वही

अब हो रहा है। बहुत बुरा जमाना आ गया है। अब तो भगवान से यही अर्दास है—उठा ले, बस। अन्तिम शब्दों में बाबा के चेहरे पर अथाह तकलीफ तैर आयी थी। मरने के नाम पर या जिन्दगी जीने के नाम पर, यह नहीं कह सकता। हां, इतना जरूर लगता है कि बाबा इन दिनों बेहद चिंतित रहने लगे हैं। लेकिन इन चिंताओं का इलाज भी तो कुछ नहीं है। बुढ़ापे में व्यक्ति अपने अतीत में डूबा रहता है और उस स्वर्णिम अतीत की तुलना वर्तमान से करने बैठता है। निश्चित है कि अन्तहीन चिंताएं उसे घेर लेती हैं। ऐसी चिन्ताएं जिनका एकमात्र उपाय मृत्यु है, और यही तो बाबा चाहते हैं।

अब तो ऐसी अंधेरगर्दी मची हुई है कि लगता है कहीं कोई राज ही नहीं है। रावण-राज्य हो रहा है—हर तरफ लूटमार, हत्या और छोटे-छोटे स्वार्थों की अन्तहीन लड़ाई। फिरंगियों के राज में भी ऐसा नहीं था। तब भेड़ और शेर एक घाट पर पानी पीते थे। लेकिन अब एक भेड़ दूसरी भेड़ को अपने घाट पर देख ही नहीं सकती। बाबा ने हुक्के से मुंह हटाकर मूंछों पर हाथ फेरते हुए कहा।

बाबा के मन में बहुत-कुछ है कहने को, बचपन से ही बाबा की अनुभव में डूबी अन्तहीन बातें सुनता चला आ रहा हूं। बाबा से ही मालूम हुआ कि अंग्रेज जनता का शोषण करते थे, लूटते थे, लेकिन प्रशासन और न्याय-व्यवस्था पर उनका अंकुश था। आज उससे अधिक शोषण है और प्रशासन एवं न्याय-व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं है। जिसकी जेब में पैसा है, वह कुछ भी कर और करा सकता है और जो खाली जेब है वह निरा पशु है, न उसका कोई अधिकार है और न है सियत। बाबा के दुःख का कारण यही है। आदमी जब आदमी का ही दुश्मन हो जाये, तब न किसी राज्य का अस्तित्व रह पाता है और न सम्पूर्ण आदमियत का। बाबा जैसे न जाने कितने झुर्रीदार चेहरे आजाद सुबह को देखकर चमक उठे होंगे, तब उन्हें लगा था अब अपना राज्य है—खुलकर सांस ली होगी। सब उल्टा हो गया। वह सारी चमक, जो चेहरे पर आत्मा में आयी थी, न जाने कहां चली गई। अब कुछ शेष है तो सिर्फ पुरानी यादें—जिनके सहारे जिन्दगी जी रहे हैं, बाबा जैसे मुरझाये शरीर।

छप्पर के सहारे से हाथ का सकेत कर मा ने अन्दर बुला लिया। मा पहले ही खाना जल्दी बना लेती है। गर्मियो का मौसम, मक्खी, मच्छर, साप, कीडा आदि से बचाव का माध्यम है—शाम का जल्दी खाना। जब मैं छोटा था, तब खाना खाकर बाहर बैठता था—छप्पर भरा रहता था। दस-पाच आदमी बहुत देर रात तक बैठे हुक्के कुडकुडाते बतियाते रहते। तब यह लम्बा-चौडा मकान कही से खाली नही लगता था और अब रात हुई नही कि खाने को आता है, भयानक एकान्त। घर मे अकेली मा और छप्पर मे बाबा। अब कोई नही आता चाहे अकेले पडे-पडे मर ही क्यो न जायें—अमानवीयता का ताडव नृत्य! शहरी घरघुसनापन गाव मे भी पालती लगा गया है।

मा अब बहुत कम बोलती है। कुछ कहने से पहले बहुत देर तक अपलक मुझे घूरती है और फिर नपा-तुला एकाध वाक्य। अब तक मा की चिन्ता, जितनी मैं समझ पाया हू, सिर्फ बहू से न मिलने की ही रही है। यद्यपि मा ने लेवी के सदर्भ मे भी कहा, लेकिन जो दर्द अभी तक गूजा है वह सिर्फ अपनी बहू से न मिलने का है। मा का अकेलापन, आसपास की औरतो का बात-बात मे ताना ही शायद उन्हे घुला रहा है। वे यह अच्छी तरह जानती है। एक योग्य चिकित्सक की तरह कि जिस मरीज पर वह हाथ डाल रहा है वह लाइलाज है। फिर भी चिकित्सक होने के नाते वह हाथ पर हाथ रखकर भी तो नही बैठ सकता!

सुबह मा ने विदा करते समय अच्छी तरह से जाने, बहू-बच्चो को प्यार देने और जाते ही चिट्ठी देने के लिए कहा था। भरी आखो से छलकते आसुओ को रोकना मा के लिए मुश्किल हो रहा था। माथे पर लटकते हल्के-से घूघट मे दरवाजे पर खड़ी मा बहुत दूर तक देखती रहीं—अपलक। बाबा ने सिर्फ सिर पर हाथ फिराया था और रास्ते की मगल-कामना की थी।

कुछ ही वर्षो में गाव का यह बदलाव मुझे कतई अच्छा नही लगा। अब गाव मे भी अलग-अलग द्वीप बन गये है, अपना दु.ख और अपना सुख भी अलग-अलग। कोई किसी के पास बैठकर दु.ख-सुख की नही कहता,

यही कारण है कि वर्षों से उपेक्षा की शिकार चौपाले टूट-फूट गयी हैं। गाव की सामूहिक जिन्दगी को मानो आजादी का साप सूंघ गया है।

घर मे अकेली मा, लेवी पर पडे काका और छप्पर मे पडे बाबा की दु खी आत्मा मुक्ति का उपाय ढूढने को छटपटा रही है, समस्त गाव के साथ।

कुछ गलत नहीं

भैया की चिट्ठी मिली—वे जर्मनी से लौट आये है। सकुशल। देखते ही पिताजी खुशी से झूम उठे, चिट्ठी माथे मे लगायी आखे बद कर। बहुत देर तक बंद आंखो मे बूंदे टपकती रही और होठ बुदबुदाते रहे। आखें खुलते ही अन्दर कमरे मे गये। भगवान के चरणो मे चिट्ठी को रखकर साष्टाग लेट गये। अन्दर से लौटकर चिट्ठी खोली और पढना आरम्भ किया। पढते हुए कई बार उनकी आंखे भर आयी। पढकर चिट्ठी खाट पर रख दी। बहुत देर तक वे अजीब सी मुद्रा मे बैठे रहे।

पास रखी चिट्ठी को मैंने भी उठाकर पढ लिया। मुझे उस चिट्ठी मे ऐसी कोई बात नही लगी जिसे पढकर बेहद खुशी हो। सिवाय इसके कि भैया सकुशल जर्मनी मे लौट आये हैं और जर्मनी हिन्दुस्तान मे बहुत अच्छा देश है। वहां की सडके, दुकाने, बसे, मकान और अन्यान्य चीजे हिन्दुस्तान के मुकाबले लाख बेहतर है। जर्मनी मे रहकर यह लगता है कि जिदगी जी रहे है और यहा तो गधा पच्चीसी। सब एब्सर्ड''।' भैया ने सारी चिट्ठी जर्मनी की प्रशंसा मे भर मारी थी। गांव कब आ रहे है, घर की समस्याओं का क्या होगा, भैया ने जिक्र भी नही किया। फिर भी पिताजी को पता नही भैया की चिट्ठी ऐसी लगी, जैसे अंधे को आंखे मिल गई हो। मैंने चिट्ठी चुपचाप उठाकर खाट पर रख दी।

पिताजी कही दूर अतीत और वर्तमान के झूले मे झूल रहे थे। उनकी नम हुई लाल आखें कभी मां के चित्र पर अटक जाती और कभी भैया के बचपन के हँसते खिलखिलाते चित्र पर। चेहरे पर रह-रहकर भाव उभर और मिट रहे थे।

मैं चुपचाप बैठा रहा। पिताजी की इस स्थिति को देखकर मेरे मन ने भी बीच मे बोलना उचित नही समझा। वैसे पिताजी और मेरे बीच अधिक सवाद की स्थिति भी नही है। बचपन से ही कुछ ऐसा सस्कार मिला है कि हम दोनो एक साथ रहते हुए भी एक दूसरे के लिए अजनबी ही है।

अन्नू की चिट्ठी पढी। वह जर्मनी से लौट आया है। 'आज तेरी मा होती...।' कहते हुए पिताजी की आखे बह चली। दोनो आखें बहती रही और होठो के बुदबुदाने से लगा कि पिताजी कुछ कहना चाह रहे हैं लेकिन आवाज स्पष्ट थी। दोनो हाथ ऊपर कर शायद भगवान को धन्यवाद अर्पित किया।

पिताजी जो कुछ कहना चाहते है, उसे मैं भली-भाति समझ रहा हू। एक मध्यम वर्ग का किसान परिवार जो गाव से निकलकर मथुरा, अलीगढ भी जाने मे डरे और उसका बेटा जर्मनी घूम आये, उससे अधिक खुशी की बात पिताजी के लिए और क्या हो सकती थी। मा के मरते समय जिस प्रकार से परिवार टूटा और बिखरा था, उस भयावह त्रासदी मे अकेले पिताजी ही थे जो एक सघर्षशील व्यक्तित्व की तरह अनवरत लड़ते रहे, जिदगी की अदम्य परेशानियो से। दो छोटे-छोटे बच्चों का भार और ऊपर से किसनई का रात-दिन का काम। रात मे अधेरे ही उठकर खाना बना लेते और फिर खेती के काम मे लग जाते। लगातार बारह साल तक पिताजी ने सघर्ष किया। मा के मरते समय भैया 8-9 साल के थे और मै कुल 3 साल का। इन बारह सालो मे पिताजी की आखो ने जो स्वप्न बुने थे, शायद वही इस चिट्ठी मे एकाएक मिल गये है। तभी तो वे बेहद प्रसन्न हैं। जब भैया की नौकरी लगी थी तभी गाव के पडित ने कहा था, अब दिन फिर गये समझो। कैसे नही फिरते, कष्ट भी तो तुमने उठाये हे। बारह साल मे तो घूरे के दिन भी फिर जाते है, फिर तुम तो आदमी हो। पडित जी की बातें सुनकर पिताजी का मन खुशियो के निर्झर मे नहा गया था। भैया की नौकरी लग जाने के 6-7 महीने बाद जब चिट्ठी आयी कि वे तीन महीने के लिए विशेष ट्रेनिंग के लिए सरकारी खर्चे पर जर्मनी जा रहे हैं तब तो चिट्ठी पढ़कर पिताजी पगला से उठे थे। उनका बेटा जर्मनी जा रहा है, इस खबर ने उनके मन के घावों को एकाएक ठीक कर दिया

था। हाथो मे पड़ी कड़ी ठेकें अचानक फूल की मानिंद महकने लगी थी। दोनों हथेलियों को खोल उन्होने मुह से लगा लिया था। कई दिन तक वे खेतो की तरफ निकले ही नही, बरसो से बक्से मे बन्द धोती-कुर्ता निकाल कर पहना और ऊपर से सफेद टोपी। जंचकर वे गाव मे घूमते रहे थे। जरा अवसर मिला नही कि घंटों बैठकर समझाते कि उनका बेटा कितना होशियार और अक्लमन्द है। सारे गाव की ही नही वरन् इलाके और जिले भर की नाक ऊंची कर दी है। है कोई और दूसरा, जो हिन्दुस्तान छोड़ कही गया हो? कौन बुलाता है? मूर्ख तो यही जिंदगी भर पेट पालते रहेंगे। बाहर के लिए तो'''।' नेहरू जी और गाधी जी गये थे बिदेश तभी तो उनका आज नाम है, यही पड़े रहते तो कौन पूछता? और अब उनका अन्नू'''।'

भैया के तीन माह जर्मनी-प्रवास के समय पिताजी ने कितने व्रत, जाप और पाठ किये थे, उनकी गिनती उनके पास भी नही है। जिसका ध्यान आ गया और जिसके बारे मे किसी ने कह दिया, लग गये, पूरे मन से। हे भगवान् मेरा अन्नू सकुशल वापिस आ जाये। वहा किसी प्रकार की परेशानी में न पड़े। उसके लिए सम्पूर्ण मार्ग सरल और सहज हो जायें। भगवान से मागने के लिए शायद पिताजी के पास और कुछ था ही नहीं। यद्यपि जर्मनी जाकर भैया ने कोई चिट्ठी नही दी, तथापि पिताजी रोज डाक मे उसकी प्रतीक्षा करते रहते। खुद पोस्ट आफिस जाते और पता करके आते और जब लौटकर यह पहली चिट्ठी मिली है तो उनकी खुशी का कोई ठिकाना ही नही है। भैया की चिट्ठी मा और भैया दोनों का हँसता-खिलखिलाता चित्र बन गई है। फिर पिताजी देख रहे है दोनों को—लगातार जैसे सदियो बाद देख रहे हो।

रात में खाना खाकर खाट पर लेटते हुए पिताजी ने मुझसे कहा—तुम जयपुर चले जाओ। उसका पता ले जाना। आराम से पहुंच जाओगे। वहा तो सब जानते ही होंगे। बड़े आदमियों को कौन नही जानता? मरना तो छोटों का है, जिन्हे गाव मे भी एक पशु से ज्यादा जानकारी नही मिलती। फिर कुछ रुककर कहा—अन्नू को सारी हालत समझा देना और फिर वह जैसा कहे। सज-धज कर जाना, अब अन्नू वैसा नही रहा है, वह बहुत बड़ा

डॉक्टर है, जयपुर का नामी-गिरामी । अटैची सेठ जी की ला दूगा । पिताजी ऐसे कह रहे थे जैसे मैं भैया के पास नही शादी मे जा रहा हू । पहली बार पिताजी को मैने इतना खुश देखा है । एक ही दिन में पता नही उनकी झुरिया कहा चली गयी, चेहरे पर आयी प्रभावहीनता कैसे प्रभा-मण्डल बन गयी । खुशी का गुब्बार बार-बार छा जाता, पिताजी धीरे-धीरे बोल रहे थे ।

दूसरे दिन पहली बस से ही हम मथुरा पहुच गये । पिताजी ने जल्दी उठकर पराठे बना दिये थे—मेरे और भैया के लिए भी । भैया वाले पराठो मे उन्होने अन्दर-बाहर अधिक घी भरा था । पतले-पतले चार पराठे बनाकर उन्होंने अलग से अपनी पुरानी धोती मे से टुकडा फाड़कर बाध दिये थे और बताया भी कि ये पराठे अन्नू के है । अपने सामने उसे पकडकर खिलाना, बहुत खुश होगा, बहुत दिनो बाद मेरे हाथ के पराठे खाकर । अब कहा मिलते होगे—ऐसे पराठे उसे ।

जयपुर वाली बस मे मैं बैठा तो पिताजी की आखे छलछला आयी थी । बस स्टार्ट होते ही उन्होने कहा सावधानी से जाना, अन्नू से सब बाते अच्छी तरह से समझा देना । किसी प्रकार की···।' बस चल दी थी, पिता खड़े देखते रहे जब तक कि बस आखो से ओझल नहीं हो गयी ।

शाम को बस जयपुर पहुची—पूरे रास्ते मे भूमिका तैयार करता रहा था कि क्या कहना है और कैसे कहना है । बस से उतरकर मैने मुह-हाथ धोये, अटैची से अच्छे कपडे निकाले और पहने, तब रिक्शा कर मकान पर पहुचा । घटी बजाते ही दरवाजा खुला । एक स्वस्थ और आकर्षक महिला ने दरवाजा खोला । मेरे मुह से अन्नू भैया का नाम सुनते ही वह पता नही कैसा मुह सिकोड गयी और अन्दर मुडते ही 'अनुराग, देखो कौन है···।' भैया आये और अन्दर ले गये, अन्दर एक सजे-धजे कमरे मे । भैया का रग निखरकर कैसा सुर्ख हो गया है और शरीर शायद मैने आज तक ऐसा शरीर नही देखा एकदम लाल, सुभापचन्द्र बोस जैसा । भैया ने मूछे कटवा दी हैं । बाल कैसे चमक रहे है । सुनहरी फ्रेम के चश्मे से दमकती दो आखे कैसी सुन्दर हैं, मैंने पहली बार शायद ऐसा भैया की आखो मे पाया है । भरना गाव मे तो उनकी आखो को बिल्लीनुमा आखें कहा जाता था ।

"कब चले गाव मे ?—भैया का यह पहला वाक्य था, जिसने मेरा ध्यान भग कर दिया।

आज ही सुबह।

पिताजी ठीक हैं।

हा।

भैया चुप हो गये। मे उनके अगले प्रश्न की प्रतीक्षा करता रहा, लेकिन उनके पास इसके अलावा शायद और कोई प्रश्न था ही नही। इनके पूछते समय भी उनके चेहरे पर आत्मीयता का भाव शायद ही उभरा हो। एक साधारण से रूप मे जैसे पिताजी के बारे मे नही, छुट्टा मीरासी के बारे मे पूछ रहे हो। मैं नही सोच पा रहा था कि भैया ऐसे क्यों हो रहे है ! क्या उन्हें मेरा यहा आना खल रहा है अथवा ! मै कुछ नहीं सोच पा रहा था। इतने मे अन्दर से आवाज आई और भैया उठकर चले गये।

मैंने खुलकर पूरी सास ली। भैया के सामने मैं कुछ घुट-सा गया था। ऐसा लग रहा था, जैसे मेरे गले पर कोई मजबूत पंजा कस रहा है। कुछ देर और ऐसा रहा तो मेरा दम घुट जायेगा। सिकुडे हुए अपने शरीर को मैंने फैलने दिया। फिर इधर-उधर नजर दौडायी। आलीशान कमरा। भैया जब पढ़ते थे, तब मां का एक चित्र उनके पास था, वह अब उस कमरे मे कही दिखायी नही पड़ रहा। सामने आलमारी मे फूलो का गुच्छा लिए भैया के साथ इसी सुघड़ औरत का हँसता फोटो।

भैया आ गये। एक गिलास पानी भी साथ लाये।

मैंने गिलास उठाकर पानी पी लिया और चुपचाप बैठ गया। थोडी देर बाद भैया ने अखबार ले लिया और पढने लगे थे। मै उनकी तरफ वैसे ही देखता रहा। भैया मेरे सामने वाले सोफे पर आराम की मुद्रा मे बैठे थे अखबार पढते रहे। मेरी समझ मे कुछ नही आया कि अब क्या किया जाये ! कैसे बातें करू ! पिताजी की कही हुई ढेर सारी बाते कब और कैसे बताऊं। क्या भैया इतनी बात सुनेंगे ? यदि सुनना चाहते हो तो खुद भी तो पूछ सकते थे ? क्या भैया को नही मालूम कि घर मे पिताजी कौन-सा राज्य भुगत रहे है ? एक तो गाव का जीवन और ऊपर से पिताजी की घटती उम्र। लम्बे समय तक किये गये सघर्ष भी तो अब धीरे-धीरे चोट

कर रहे है। थके और घायल योद्धा पर कब कौन चोट कर जाये, पता नही रहता। पिताजी भी तो ऐसे ही घायल योद्धा है। अपने समय के सबसे अधिक सघर्षशील। गाव मे ही क्या रिश्तेदारो मे भी एक मिसाल बनाई है। आदमी चाहे तो क्या नही कर सकता। लेकिन आज पिताजी कर सकने की स्थिति मे नही है, वे असहाय हो गये है। असहाय इसलिए नही कि अब कुछ कर नही कर पाते, बल्कि इसलिए कि अब कर सकने की स्थिति मे नही है। भैया पर वे इतने अवलम्बित हो गये है कि उनका अब काम करने का मन नही चाहता। शायद उनका मन अब सोचता होगा कि जब बेटा कमाऊ हो गया तब पिता को करने की आवश्यकता ही कहा रह जाती है? यह उनका अपना सकल्प था। इसके पीछे विचारधारा वही है कि जिन्दगी भर काम किया, बेटा लायक निकला, फिर पिता आराम करे। चौथेपन वाली हालत म। एकदम सामन्ती विचारधारा जो आज भी हमारे मन-मस्तिष्क को ग्रसे हुए है। पिताजी कौन अपवाद है, जो बच निकले।

घण्टी बजी, भैया ऐसे अखबार फेक उठे, जैसे उन्हे इन्द्रासन मिलने की खबर आई हो। दरवाजा खुला। एक भारी गोल-मटोल शरीर वाला आदमी अन्दर आया। भैया खिल उठे थे। अन्दर से वही औरत आकर भैया के बराबर बैठ गई थी। तीनो बाते कम हँस ज्यादा रहे थे। बातो से लगता था शायद अपने विभाग के किसी अधिकारी की चाल-ढाल, उसका हँसना-बोलना, काम करने का ढग और विभागीय शिथिलताओं की आलोचना कर रहे थे जिसमे वह और भी बढ़-चढकर बोल रही थी। बातें करते-करते जैसे वह थक गए हो वह उठी और थोडी देर बाद चाय बना लाई। चाय के साथ और दो-तीन प्लेटे। भैया के कहने पर मैंने एक कप उठा लिया। वे तीनो आपसी बातो मे इतने मशगूल थे कि उन्हे लगा ही नही कि और कोई भी यहा बैठा है। मैं कुछ-कुछ ऊब-सा रहा था। कब तक इस तरह से बैठा रहा जा सकता है। आदमी चाहे कितना ही छोटा क्यो न हो, वह बहुत समय तक अपनी उपस्थिति की नकारात्मकता स्वीकार नही कर सकता।

मैं सब-कुछ सहते हुए चुपचाप बैठा रहा। बीच मे बोलना उचित नही समझा। पिताजी ने चलते समय कहा था, भैया अब बडे आदमी हो गये है। बड़ो के सामने क्या कहा जावे?

खा-पीकर वह मोटा आदमी हँसता हुआ चला गया था। तीनों कमरे के बाहर निकल गये। उसे विदा कर वे दोनो हंसते हुए कमरे मे आये। मैंने इस बीच अखबार उठा लिया था। भैया ने मुझे संकेत करते हुए बताया कि यह मेरा छोटा भाई है और यह तुम्हारी भाभी। मेरे हाथ अनायास ही जुड़ गये थे—भाभी ने मुह फैलाते हुए हलो कहा था, बस। इतना भर कह वह अन्दर चली गई थी।

कपड़े बदल लो। जब से आये हो, तभी से ऐसे ही बैठे हो। भैया का यह पहला आत्मीय वाक्य था। मै यह सुनकर अन्दर तक गुदगुदा उठा था। पिछली सारी थकान दूर हो गई थी, अपने ही आप। एकदम ऐसे लगा जैसे भैया मे कही कोई परिवर्तन नही हुआ, इतनी देर से जो मैं सोच रहा था सब गलत था, भ्रम था। भैया वही है ठीक पहले की तरह। अन्दर से आवाज आई, भैया उठकर चले गये।

भैया कही चले गये थे। मैं चुपचाप कमरे मे बैठा रहा। भैया की निजता और सहजता की गध को मैं बराबर सूघता, वह अलग-अलग तरह की होती। कभी अन्दर तक महकाने वाली और कभी एकदम ऊबाऊ। घर मे सिवाय भाभी के और था ही कौन, जो इस समय मुझसे बाते कर सकता! भाभी, शायद नहीं चाहती कुछ बोलना। धीरे-धीरे मैं भी इस हालत में आ गया था कि अच्छा है कौन बातें करे? अकेलापन कमरे मे शून्यता का विष घोल रहा था। हवा मे हिलते एक रंग के पर्दे हिलहिला जाते, मेज पर रखा अखबार फड़फड़ाकर रह जाता।

कमरे की निर्जीवता को चीरते भैया कमरे मे आ गये थे। पहली बार मेरे पास वाली कुर्सी पर बैठे। मैं अभिभूत हो उठा था। बहुत दिनों बाद भैया के पास बैठने का मौका मिला। उन्होंने जर्मनी की शिक्षा, संस्कृति और सभ्यता की बातें शुरू कर दी। सोदाहरण। विज्ञान के नये-नये प्रयोग। वहा का मानसिक आधार—फोरवर्डनेस। काम के प्रति निष्ठा और यहा न कोई सभ्यता और न संस्कृति। शिक्षा बेकार। जो है वह भी निरर्थक। संकुचित मस्तिष्क। हिन्दुस्तान मे कोई टेलेंटेड आदमी नही रह सकता। टोटली सिली कण्ट्री। भैया के मुह पर घृणा का भाव उभर आया था। वे बहुत देर तक शायद अपने हिन्दुस्तान लौटने के कारणो और यहा की धूर्त-

नाओं का विश्लेषण कर चिन्तित हो उठे थे। मै ऐसे मे भला क्या कहता उनसे।

बेकार की बातो से मै ऊब गया था। मन मुक्ति के लिए छटपटा रहा था। सब-कुछ अधूरा छोडकर मै उठ खडा हुआ। भैया ने घर के बाहर निकलकर रुकने को कहा शायद औपचारिकतावश। पिताजी के स्वास्थ्य के सन्दर्भ मे भी कुछ पूछा जिसका जवाब मेरे पास भी नही था।

दरवाजे तक छोडकर वे कमरे मे वापिस लौट गये। मैं धीरे-धीरे कदम उठाता चल दिया। कमर पर लटके थैले मे बधे पराठे हवा के साथ तीव्र गध बिखेर जाते। पिताजी की मेहनत। जब एक मेहनत ही बेकार चली गई, तब दूसरी क्या है? भैया भी तो पिताजी की मेहनत ही है—पहली और अब तक की सबसे बडी शायद आखिरी मेहनत। मन खिन्न-सा हो उठा, रास्ते मे रिक्शा करने की भी याद नही रही। पिताजी आते तो कौन-सा रिक्शा करते। बस यू ही खटाम-खटाम। पिताजी के खून-पसीनाई पैसे से रिक्शे मे बैठना वैसे भी मुझे बुरा लगा।

बस मे बैठ सारे रास्ते उपसहार की भूमिका बनाता रहा। जाते समय प्राक्कथन था, तो अब उपसहार ही करना पडेगा। पिताजी क्या सोचेंगे, क्या करेंगे वे अब। मौत के निकट पहुचता बूढा शरीर अब कुछ करने के काबिल भी तो नही रहा। पिताजी ने जिस इमारत की चिनाई अपने गाढे खून-पसीने से की, वह तो निरी रेत की इमारत हो गई। हाथ लगते ही भुरभुरा-कर गिर पडी। भैया की शादी के स्वप्न? पिताजी ने सारे गाव को निमत्रित कर रखा है—बारात के लिए। धूमधाम की शादी के लिए, सब बेकार। गाव मे कैसे मुह दिखायेंगे—वे। कितनी बढ-चढकर तारीफ किया करते थे—सब भ्रम था। यथार्थ की तेज रोशनी कब तक भ्रम-निर्मित धुध को छाये देखती रहती। पिताजी शायद यह नही समझ पाये थे। इसलिए कि भ्रम से उनका दूर का भी सम्बन्ध नही है। यथार्थ मे खुशी साम नेने वाला भ्रम वे क्या जाने? भैया के पास रहकर होने वाली मेरी पढाई सब धरी रह गई। पिताजी कितने गलत थे—यह आज मालूम हुआ।

सडक से गाव तक के लम्बे रास्ते पर मुझे बहुत परिचित मिले। सबने भैया के हाल-चाल पूछे, गाव जाने के सन्दर्भ मे भी पूछा और अपने मे

असम्बन्धित कई प्रश्न मेरी ओर उछाले। मैं 'हा-नही' मे ही सब कुछ झेल गया। गाव मे जितनी हमदर्दी दिखाई जाती है, उतनी होती नही है। दिखावा सिर्फ बाद मे हँसी उडाने भर को होता है। मैं सब समझता हूं इसलिए कोई महत्त्वपूर्ण टिप्पणी नही की।

शाम का सूरज थक-सा गया। जमीन पर अधेरे की चादर होले-होले बिछ रही थी। गाव के पास बने मन्दिर पर दीपक जगमगा उठा था। धीरे-धीरे मैं घर पहुचा। पिताजी खेतो पर गए हुए थे। उन्हे तो आज मेरे लौटने की कल्पना भी नही थी—वरना वे रास्ते की ओर देखते रहते अपलक।

अधेरे की गहरी चादर मे लिपटे पिताजी घर आ गए थे। मुझे देखकर ही शायद उन्होने अनुमान लगा लिया था कि कही कुछ गलत हो गया है। आने के बारे मे कुछ नही पूछा। भैया की राजी-खुशी पूछी, वह क्या-क्या कह रहे थे, अब कैसे लगते है आदि कई भावुक प्रश्न पिताजी ने पूछ डाले। मैं वही रटा-रटाया उत्तर देता रहा। घर के हालात के सम्बन्ध मे कुछ नही पूछा। भैया कुछ सहायता करने की भी कह रहे थे—नही पूछा। अनिवार्य प्रश्न ही पिताजी भूल गये, जैसे एक विद्यार्थी भूल जाता है। पूरी साल पढ़ाई करने के बाद परीक्षा-कक्ष मे भूलना कितना बुरा लगता है! कितना अहित करता है—वही हाल पिताजी का है।

थैले मे रखे पराठे पिताजी ने शाम को आवारा गायो को खिला दिये।

रात-भर इधर-उधर करवट बदलते रहे थे। सुबह उठे और बैल हल मे जोते और चल दिए खेत की तरफ। रोजाना की तरह—जैसे कुछ हुआ हो नही। एक साल फेल होने पर दुबारा परीक्षा भी तो दी जाती है। शायद उसी की तैयारी मे अचिन्तित और अनथक।

बैलों की पीठ पर हाथ मारते, पूछ मरोड़ते वे चले जा रहे थे भागते से।

'एक गवाह मौत'

आसो बुआ का इस तरह से हमेशा को चले जाना मेरे मन-मस्तिष्क को छील गया था, निर्ममता के साथ। एक दारुण कष्ट मुझे अव्यवस्थित कर गया था। मोह जब टूटता है, तब उसके साथ-साथ मन भी टूटता है—किरच-किरच होकर। बुआ के न रहने का अहसास ऐसा लगता मानो सजे-धजे हरसिंगार के पेड को किसी ने अचानक झकझोर दिया हो। उनका बूढ़ा झुर्रीदार मुह, सन जैसे झक सफेद बाल, लाठी के बल झुककर चलता शरीर यकायक आखो के सामने घूम गया। एक क्षण को लगा मानो बुआ मेरे पास बैठी कह रही है—यह समाज ऐसे थोडे ही बदलेगा, बेटा। सीतारामी ओढकर दूसरो की कृपा से जिंदगी गुजर सकती है, लेकिन जिसे जिंदगी कहते हैं, असली जिंदगी, वह सीतारामी फेककर अपने ही बल जी सकते हैं। यह समाज ऐसे रगे भेडियो का है, जिनके मुह खून लग गया है। खून-लगा भेडिया अपना होश-हवास खो बैठता है, तब उस हालत मे उसका एकमात्र उपाय उसका खून ही है। इसके अलावा अन्य समस्त उपाय दिखावे के हैं। भ्रम हैं, और कुछ करने के नाम पर धोखा देने और धोखे मे रहने के हैं।

बुआ का यह आर्य-वाक्य था, जिसे वे मौके-बेमौके कई बार सुना चुकी थी। उनके अन्दर एक छटपटाहट थी, जो मेरे सामने लाख छुपाने की कोशिशो के बाद भी प्रकट हो जाती थी। कहते समय उनका चेहरा तमतमा उठता था और सूखे बास-से हाथ ऐसे चलते जैसे बुआ अभी उठ-कर रौद्र रूप धारण कर समाज मे विप्लव करेंगी। पहले-पहल मैं उनकी इस अवस्था को देख डर-सा जाता था, लेकिन धीरे-धीरे लगने लगा कि

जिस सौम्य रूप में हम उन्हें देखने के आदी है वह परिस्थितिवश है । पके कोयले-सी आंखों से न धुआं उठता और न चिनगारी, लेकिन कुछ ऐसी अदृश्य चीज अवश्य निकलती जिसके सामने आदमी खुद उन्ही-जैसा दहक उठता ।

बुआ के साथ रहते मैंने उनके अनेक रूप देखे । कभी दन्तहीन सरल, निश्छल हँसी जो वात्सल्य और ममत्व का निर्झर बहा देती । कभी सिर पर टोकरा, हाथ मे लाठी और खिचड़-खिचड़कर चलता फूस-सा पका शरीर, कभी घर में बैठ अनेक किस्से-कहानियो के बल घटो चलता वाक्-चातुर्य, कभी किसी उधार वाले से तगादे मे बिगडता चडी-रूप और कभी एकांत मे घर के किसी कोने में चुपचाप बैठा सहज-शात मन । ऐसा लगता, जैसे समष्टि रूप से बुआ कभी मर नही सकती, अपने सम्पूर्ण अस्तित्व मे समायी उनकी आत्मा अलग कैसे हो सकती है ।

कभी-कभी बुआ बात करते-करते चुप हो कही अतीत मे गहरे उतर जाती । ऐसे अवसरों पर उन्हें यह ध्यान ही नही रहता कि और भी कोई उनके पास बैठा, उनकी गोपनीयता को परख रहा है । उनकी आखे कही दूर टिक जाती, हाथ-पैर शात मानो आराम कर रहे हो, माथे की झुरिया घनी होती जाती, शरीर निर्जीव-सा हो जाता, कुछ क्षण बाद मे वे होश मे आती, इधर-उधर देख चीजो की उलट-पुलट करती अपनी उस अवस्था को छिपाने के लिए । छिपाने की कला मे वे कदापि निपुण नही थी, न ऐसा होना ही चाहती थीं लेकिन यह आदमी की कमजोरी है कि वह अपने कलमुहे अतीत को छिपाना चाहता है । क्योकि उस भीषण परिस्थिति मे वह अकेला और नि सहाय सब-कुछ झेल लेता है, सुनहरे भविष्य के लिए जिंदा रहने की चाहत में । जैसे ही वह उससे मुक्त हो अपने को सशक्त अनुभव करता है, वैसे ही व्यतीत पर घृणा हो आती है । यह घृणा ही ऐसा भाव है, जिसके बल वह आगे बढ़ता है ।

मुहल्ला खटीकान गाव का बड़ा लेकिन दीन-हीन मुहल्ला है । हजारो की आबादी, लेकिन किसी पर एक कूड खेत का नाम नही । चकबन्दी के बाद बचत प्रधान ने पट्टे पर दी, वह भी इन लोगो को नसीब नही हुई । कुछ चमार ले गये थे और शेष बड़े-बड़े लोगो के कब्जे में आज तक है —

बिना पट्टे के । कई बार शिकायतें हुई, तहसीलदार और एस० डी० एम० आये लेकिन शेर के मुह से शिकार छीनना आसान है, क्या ! हरिजन और खटीक पाव पटक-पटककर मर गये, किन्तु जमीन कहा । यही वजह है कि हरिजन और खटीक मुहल्ले के ज्यादातर लोगो की जिदगी बूचड़खाने-से मे कट रही है । जाये तो जायें कहा ।

मुहल्ला खटीकान के बाहरी हिस्से मे रास्ते के सहारे चन्नी खटीक का घर है । घर क्या, बस गुजर लायक । पीछे एक छोटा-सा कमरा, उसके आगे आगन और बाहर फूस की झोपडी । कमरा चन्नी के बाप ने पता नही कब बनवाया था, उनकी जीर्ण-शीर्ण हालत सदियो की गवाह है ।

चन्नी गाव का नामी आदमी था । भरफंक लठैत, लिलोर इतना कि पाच सेर आटे की पूडिया एक साथ बैठकर खा जाये, लम्बा-चौड़ा पट्ठा । एक बार गाव के बौहरो के डकैती पड गयी, सारा गाव चुप बैठ गया जहा का तहा । चन्नी पर रुका नही गया कमरे की छत पर खडा हो ऐसी ललकार मारी कि हजारो लाठिया चमक उठीं । तेल चुपडी और मजबूत तारो मे मढी लाठियो का ऐसा प्रदर्शन शायद ही पहले कभी हुआ हो । अकेले चन्नी ने लगातार दो घटे लाठी चलाई---डकैतो को जान बचाना मुश्किल हो गया था ।

इतना सब-कुछ होने के बाद भी वह गाव का कृपा-पात्र नही रहा । इसका कारण सिर्फ यह था कि वह किसी की हा मे हा मिलाना नही जानता था । अपना काम किया और मस्त रहा । लेकिन गाव मे ऐसा मन-मस्त आदमी कैसे जी सकता है । गाव मे जितनी गिरोहबन्दी है, उतनी शायद शहर मे भी न होगी । इसलिए चन्नी हर एक की उपेक्षा का शिकार रहा ।

चन्नी के इतनी सन्तान हुई कि उनकी सख्या गाव मे अब किसी को सही याद नही है । कोई नौ बताता है, कोई दस और कोई एक दर्जन से भी ज्यादा । बचा एक भी नही । भाग्य की विडम्बना कि अन्तिम सन्तान लड़की हुई और ऐसी कि मा को प्राण देने पडे । चन्नी तब चालीस से कम था । यह भी कोई उम्र होती है और वह भी खटीक घुरों मे । दूसरी शादी के कई पैगाम आये, लेकिन चन्नी टस से मस नही हुआ । किसी की नहीं

मानी । पूरे दिन-रात लड़की को लेकर पड़ा रहता । घर से बाहर निकलना भी यदा-कदा हो गया था ।

लडकी का नाम आसो रखा । आसो यानी कि आशा । चन्नी के भविष्य की आशा । चन्नी आसो को पाकर सब-दुख भूल गया था । पत्नी का दुख भी । गाव की सामूहिक जिंदगी मे सन्तान बहुत जरूरी है, निःसतान आदमी का मुह देखना भी बुरा समझा जाता है । धन-सम्पत्ति का जितना महत्व है, उससे अधिक आस-औलाद का । जिसके औलाद ही नही वह भी कोई आदमी है । वह आदमी की तरह जीना भी चाहे तो पास-पडौस की बुढिया ही नही जीने देगी । उन्हे औलाद मे ही पुरुषत्व नजर आता है । शिखडी की जिंदगी, जिंदगी थोडे ही है—बस ऐसे ही है ।

आसो की मा पूरे मुहल्ला खटीकान मे कमेरी औरत थी । काम करने जहा चली जाये वहां तन-बदन की सुध भूलकर काम करती । कोई शौक नही । शौक भी क्या औरतों का एक ही तो शौक होता है – चकर-चकर करना वह भी भगवान ने उसे नही दिया । और औरतें काम कम करती, बातें ज्यादा, इसीलिए आसो की मा कभी खाली नही रहती ।

आसो जैसे-जैसे बड़ी होती गयी, वैसे-वैसे घर-बाहर के काम में हाथ बटाने लगी । बिना मा की लडकी या तो एकदम आवारा हो जाती है या बहुत कमेरी । चन्नी के भाग्य कि आसो पर मां का पूरा असर आया था वह ठीक अपनी मा की तरह मन लगाकर काम करती, फुरसत के समय घर का काम निबटाती । इधर-उधर टहलना और गप्पे मारना उसने सीखा ही नही था ।

बारह वर्ष की आसो का विवाह कर दिया गया । लडका अधबूढा था । पहली बहू मर गयी थी—एक लड़का छोडकर । घर का अच्छा था । मध्यस्थता चौकीदार ने की थी । चन्नी बहुत खुश हुआ था । अच्छे खानदान का लड़का मिल गया । कोई ऐब नही । चौकीदार ने बताया कि बीडी-सिगरेट भी नही पीता । दो-सौ भेड-बकरी है । भैया पुलिस मे सिपाही है और बाप चौकीदार और रही उम्र तो उसकी क्या है । करनी-धरनी जाति है, भैया । बडे लोगो की तरह ऐसा तो है नहीं कि जिसके गले पड गयी तो मरे फंदा छूटे । चन्नी का मन गदगदा गया था । बगैर सोचे-समझे

उसने रुपया भेज दिया था और चट्ट-पट्ट जाडों मे ही विवाह । गुडिया-सी आसो सज धजकर गयी थी । घूघट मे बैठी रोती रही थी —चीख-चीख-कर जैसे बकरी जिबह होने जा रही हो । चन्नी ने गले से लगाकर विदा किया था—भरी आखो से । मुहल्ले-पडोस की औरतो के कहने पर याद आई थी—आसो की मा । वह होती तो कितनी खुश होती—अपने सामने लडकी की शादी होते । उसकी याद आते ही चन्नी जोर से फफक पड़ा था । उनकी आखो मे छाये वर्षों के वादल एकदम बरस पडे—उसका शात और उदास चेहरा नहा उठा । चन्नी सिहर-सा गया ।

आसो क्या गयी—चन्नी अनमना-सा हो गया । मन भी तो नही लगता, अब घर काटने को आता है । आसो की मा के बाद हुई रिक्तता को आसो ने भरा था और अब तो दूर-दूर कही कोई उम्मीद भी नही है । इस नाउम्मीदी मे अकेले कैसे जिया जा सकता है—चन्नी सोच ही नही पा रहा है । अब गाव छोडकर कहा जाये । आसो के पास । यह विचार आते ही उसकी आखें खिल उठी । लेकिन दूसरे ही क्षण उसे लगा कि लडकी की ससुराल मे रहने से तो मरना अच्छा है । कहां तो वहां का पानी पीना भी पाप है और कहा अब वहा जाकर रहेगा । बिल्कुल नही । इस उम्र मे यह पाप अपने ऊपर नही चढायेगा ।

शाम की खबर ने उसे अन्दर तक तोड दिया । बमी दुकानदार का लडका कह रहा था—आसो को उसका पति बहुत मारता है । वह वहा बहुत परेशान है । हाथ-पैर सूज गये है और चौकीदार ने तीन हजार रुपये लेकर विवाह कराया था । चन्नी अन्दर आकर चुपचाप लेट गया था । रात को डिबिया भी नही जलाई और न खाना बनाया । रात-भर रोता रहा था । शरीर का पोर-पोर ऐसे दर्द कर रहा था जैसे किसी ने लाठियो मे कूटा हो । फिर-फिरकर आसो और उसकी मा की याद आती रही । अब क्या होगा आसो का, कैसे पहाड-सी जिंदगी गुजरेगी उसकी । शादी के समय उसने सोचा भी नहीं था कि ऐसा भी होगा । चौकीदार उसका पड़ोसी, हमदर्द भी और उसी ने ऐसा किया । एकदम बेपर्दा कर दिया । चौराहे पर जाकर नगा खडा कर दिया । अब कहा डूब मरने की जगह भी तो नही है । आदमी स्वय चाहे कैसा भी रह ले, लेकिन समाज और

जाति मे वह सम्मान से बैठना चाहता है। वह सम्मान ही उसका जीवनाधार होता है। चौकीदार ने उसका आधार ही खड-खड कर दिया।

चन्नी घर से बाहर नही निकलता। आस-पड़ौस के लोग आते, हमदर्दी जताते, बीमारी पूछते, चन्नी कुछ नही बोलता। दाढी मे खारे आसुओं की धारा बहकर मुह तक आती और अनायास खुले होठों मे अन्दर तक चली जाती। कहे भी तो क्या। गाव में अब तक इज्जत ढकी हुई है उसे क्यों उघाड़े—अपने आप। जब वहा से खबर आयेगी, जब का तब देखा जायेगा। अपनी फूस सी इज्जत को ढके वह घर मे ही पडा रहा—। इज्जत जिसके बारे में वह जानता था कि अफवाहों की एक चिनगी भी पूरी जिंदगी की कमाई इज्जत को तहस-नहस कर सकती है। चाकीदार से भी कुछ नहीं कहा। कहे तो वह उल्टा लडने को आयं। गाव तमाशा देखेगा। गाव इसलिए चन्नी नही गया। दिनो-दिन हालत बिगडती गयी और सातवें रोज तेज बुखार आया वही चन्नी को कष्ट-मुक्त कराकर प्राण ले गया। शायद चन्नी की आत्मा इज्जत बची रहने के कारण खुश रही हो।

चन्नी की मरने की खबर सुनकर आसो भागी चली आई थी, रोती-पीटती अनाथ बछिया की तरह डकरा रही थी। छोटी उम्र का बाल-सुलभ लावण्य रुक गया था। पीला जर्द चेहरा, हाथ-पैर जली लकडी की मानिद। घर अधर उठा लिया था। आस-पडौस की बुजुर्ग औरतें डाट-डपटकर रोकती तब कुछ देर के लिए चीखना-चिल्लाना बन्द होता। मुह से सिसकी और आखों से पानी फिर भी निकलते रहते। आसो बार-बार अपने मन को समझाती, बार-बार मुह धोती किन्तु आसू बन्द होने का नाम ही नही लेते। आसो का मन अतीत की लम्बी किन्तु लुक-छिप चलती सडक पर चलता चन्नी का स्नेह, अकेले ही मा-बाप दोनो का प्यार एक क्षण को भी अलग न करता और पता नही कितना बडा खजाना था उसके पास जिसे खुद चन्नी ही चुरा ले गया है। आसो का मन जगल मे भटके राह-गीर की तरह इधर-उधर छटपटा रहा है, मार्ग सब जगह अवरुद्ध। असहाय और अकेली भीरु आसो कुछ भी नही सोच रही है, कुछ भी नही।

चन्नी का कारज हो गया। आसो ने इधर-उधर से रुपये ले लिवाकर ब्राह्मणो को सीधा दे दिया था। ससुराल से कोई नही आया। बार खबर

भिजवायी थी रात-दिन दरवाजे के पास बैठ हर जाने-आने वाले का चेहरा गौर से देखती। कोई भी नही आया। वह तो ऐसा सोच भी नही सकती थी कि मरे-गिरे में तो लोग दुश्मनी भी भूल जाते है। इससे तो इतनी दुश्मनी भी नही थी। बाप कोई रोज मरने थोड ही आता है, लडाई अपनी जगह और सुख-दुःख अपनी जगह और लडाई भी वे ही तो करते है—आसो तो सिर्फ सुनती है—कहनी-अनकहनी सब और ज्यादा कुछ हुआ पिट लेती है, चुपचाप। चुपचाप इसलिए कि घर बसा रहे, आसो घरवाली बनी रहे। घर मे चाहे कितने भी दारुण कष्ट हो, बाहर तो वह घरवाली ही है। इज्जत तो बाहर होती है, घर मे कौन पूछता है? यह सोचकर सब-कुछ सहती रहती पशुता की हद तक। जुबान खोलती तो कब का वारा-न्यारा हो चुका होता। वह ऐसा चाहती नही है—अब भी।

बहुत दिनो तक आसो कुछ भी निर्णय नही कर पायी—बिना बुलाये ससुराल जाये या यही रहे। ससुराल किसके भरोसे पर जाये जो आदमी उसके बाप के मरने मे भी नही आया, जो निरन्तर मारता-पीटता और बेइज्जत करता रहा, उसके घर कदापि नही फिर यही गाव मे रहे किसके साथ। अकेले जिंदगी कैसे कटेगी। एकाध दिन की तो बात और है। वह भयकर सकट मे है—ऐसे सकट मे जिसमे कोई दूसरा आदमी सहायता भी नही करता, गाव भी। जो भी औरत मिलती ससुराल के सम्बन्ध मे ताने कसती कि कैसे राक्षस है जो ऐसे दुख मे भी नही आये। आसो को दूसरो का यह कहना अब भी बुरा लगता। लेकिन मना भी नही कर पाती। मना करे भी तो कौन से मुह से। कुछ औरते कहती कि आसो भाग आयी है। वह प्रतिवाद नही करती। कहा तक प्रतिवाद करे, जितने मुह उतनी बाते।

और कोई उपाय न देख आसो ने मा की तरह कूटना-पीसना, लीपना-पोतना शुरू कर दिया था। काम से काम। घर बैठे जो झुझलाहट होती थी वह अब नही होती। थकी-मादी आसो चुपचाप सो जाती। क्वचित जब अपने पैरो पर खडा होता है तब उसे अतीव आनद मिलता है। वह भी कुछ-कुछ ऐसा ही अनुभव कर रही है। बन्नी की याद कभी-कभी आ जाती लेकिन ससुराल की याद कभी भी उस तरह से नही आयी और भूले-भटके जब भी आई, एक घृणात्मक आक्रोश के साथ।

जवानी मे आदमी जैसा चाहे वैसा काम कर ले, लेकिन बुढ़ापा। जैसे ही कदम बुढ़ापे की तरफ पड़ने शुरू हो जाते है वैसे ही पिछला सब-कुछ निरर्थक और अगले के प्रति अतिरिक्त सतर्कता हो जाती है। जिससे व्यक्ति कुछ-कुछ भीरु अनुभव करने लगता है। इसी भीरुता की निशानी उसके चेहरे और शरीर पर झलकने लगी थी। सब कुछ सोच-समझकर उसने घर मे ही हरी सब्जियो की दुकान खोल ली। घर बैठे दुकान। गाव मे सब्जी मिल जाती। सुबह उठकर एकाध फेरा गाव का लगा लेती और फिर पूरे दिन दुकान पर ही।

मेरा निकट से परिचय दुकान खोल लेने पर ही हुआ। यद्यपि वह पहले भी कभी लीपने और कभी चूल्हे की मरम्मत करने घर आती। मा बताती कि गाव मे इससे अच्छा चूल्हा कोई नही सुधारती। लेकिन भाग्य देखो कि जो खुद अपने चूल्हे का नही सभाल सकी वह दूसरो का चूल्हा सभालती फिर रही है। धीरे-धीरे मा ने पूरी घटना बतायी थी। उसकी वीरता की घटना भी। उन्होने बताया था कि एक दिन हवेली वालो ने काम करने बुलाया, पता नही उन्होने उसे क्या कह दिया कि आसो ने उनकी पूरा-सी मूछे उखाड ली और भाग आयी। हवेली वाले कुछ भी नही कह और कर सके, गाव में इज्जत की वजह से। लेकिन बातें भी कही छिपती हैं। अब सारे गाव मे सबको पता है। हवेली वाले आज तक उधर से नही निकले।

मा के माध्यम से बुआ के बारे में जितनी कथाए सुनी, वे सब के सब मेरे बाल-सुलभ मन मे उनके प्रति श्रद्धा जगाती गयी। सब्जी बेचने वे जब भी आती तब बहुत देर तक हम दोनो बतियाते रहते। मा सब्जी लेकर खाना बनाने मे लग जाती और हम दोनो की अतहीन बातें चलती रहती। बहुत देर बाद वे स्वयं उठ खड़ी होती, बहुत देर हो गयी। सूरज भगवान सिर पर चढ़ आये और टोकरी अभी पूरी भर रही है। अब चलू। बुआ उठ जाती। दोनो हाथो से टोकरी को उठवाकर मै सिर पर रखवाता। अब बुआ हिलती-डुलती कापती लाठी के बल सारे बोझ को ढो ले जाती।

गांव के रिश्ते अपना सानी नही रखते। यद्यपि अब खोखले होते जा रहे हैं, तथापि ऊपर से दिखाने भर को सारा गाव अब भी रिश्तो की एकसूत्रता

में आवद्ध है। खटीकों की आसो जाट-ब्राह्मणों के लिए भी बुआ है पीछे चाहे कोई कुछ भी कह ले लेकिन मुह पर किसी की हिम्मत नही पडती। बुआ सुनाती भी तो ऐसी खरी-खोटी है—मानो अपने खास भतीजो को सुना रही हो। सुनकर सब भीगी बिल्ली हो जाते है।

ढलती उम्र, अकेलापन और गरीबी तीनो बीमारी बुआ को जोंक की तरह चिपट गई। लाख छुडाना चाहा, लेकिन कहा छुटे। ये तो ऐसी बीमारी है कि पहले मानसिक रूप से तोडनी है फिर शारीरिक रूप से और अत मे साथ ही ले जाती है। बुआ को अन्य कष्ट जो मिले सो मिले ये और जिंदगी मे साथ हो लिये। कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जिन्हे शुरू मे अत तक आराम मिलता है और कुछ ऐसे जो जन्म से ही कष्टों के पालने मे बढते है और अतिम विदाई तक कष्ट ही देते हैं। सुना है ऐसे लोग महान होते है। मा कहानियो मे सुनाया करती थी कि जो भी महान हुआ है वह हमेशा कष्टो मे पला है। कष्टो से मुह मोडने वाला आज तक कोई बडा नही बना। बुआ ने इतने कष्ट सहे लेकिन वह महान कहा है ? मा के गिनाये नामो मे बुआ का नाम कही भी नहीं है ऐसा क्यो है ? क्या परिभाषा भी अलग-अलग वर्ग के व्यक्तियो के लिए अलग-अलग होती है ? यदि नहीं तो मेरे गाव की आसो बुआ भी तो महान है। उन्हे कोई नही जानता। गाव से बाहर क्या गाव मे भी उसके कष्टो को कोई भी उस तरह से नही देखता जिस तरह महान लोगों के कष्टो को बढा-चढाकर देखा जाता है। गरीब को कौन पूछता है। उसका सत्य, उसकी निष्ठा, उसका परिश्रम एव उसका त्याग अमीरो की तराजू का पासग भर भी नही है और गरीबो की तराजू मे समाज मे मापदड भी तो नही बनते।

जब भी अवसर मिलता मैं मा से बहाना लगा आसो बुआ के पास चला जाता। बुआ जिंदगी की एक-एक घटना को भाव-विभोर होकर सुनाती। गाव मे बडे लोगों की मनमानी गुडागर्दी, नगों का नाच, गरीबो का शोषण पुराने जमाने और अब के जमाने की तुलना, ससुराल के अत्याचार और गाव मे बितायी लम्बी जिंदगी के कटु अनुभव। बुआ का चेहरा अजीब सा हो उठता। कभी-कभी तो मैं खुद डर जाता, बुआ समझ जाती और पास मे खीचकर कहती—डर गया। सुनके ही मैंने तो सब कुछ सहा है। डरो

मत ! डर किसका और किससे ! सब अपने ही तो है । जीते-जागते अपने लोग । वे कोई भूत-प्रेत थोड़े ही है । कैसे लोग है जो मृत भूत-प्रेतो से डरते है जिंदा आदमी से नही जो एक दूसरे की जिंदगी चबा रहे है ।

बुआ का डरावना रूप देखकर मैं चुपचाप भाग आता । दूसरे दिन मालूम पड़ता कि वे रातभर सोई नही थी । रात भर नीद नही आई । उन्होंने चण्डी रूप धारण कर लिया था । उन्होंने खुद बताया कि ऐसे मौको पर पश्चात्ताप होता है—ऐसे राक्षसो को जिंदा क्यो छोड़ा मार देती चाहे फासी ही क्यो न हो जाती । मरना तो था ही मर जाती उन्हें सबक तो मिलता । दूसरे क्षण ही कुछ सयत हो कहती—अब छोडो—जो गुजर गया सो गुजर गया । अब रोने से आ थोड़े ही जायेगा ?

मरने से पहले उनके सारे शरीर मे सूजन आ गई थी, चला-फिरा भी नही जाता था । महीनों वे उसी हालत मे घर पड़ी रही । किसी ने कुछ दे दिया खा लिया, वरना भूखे-प्यासे पडी रही । एक दिन मैंने कुछ कहा तो बोली, तुम चाहते हो मैं दरवाजे पर कटोरा लेकर भीख मागने बैठू । जब जिंदगी मे अब तक किसी के आगे हाथ नही पसारा तो अब क्या करूगी पसारकर । अब तो भगवान से भीख माग रही हू कि उठा ले । बस ! लगता है मेरे नाम वाला रजिस्टर ही उसके यहा से खो गया । एक गहरी सास ले बुआ ने कहा । मौत उन्हे आती है जिनकी यहां भी जरूरत होती हैं, जिनकी यहा जरूरत नही उन्हे वहा कौन पूछे ? पानी मे पडी लाश के समान फूला शरीर वातावरण को अतिरिक्त रुआसा बना रहा था ।

बुआ कुछ भी कहती उससे पहले और बाद मे वह बहुत देर तक उदास सी बनी रहती । बात शुरू करने से पहले कटोरो मे बद चीया-सी आखो से वे घूरती और बात खत्म करने पर देर तक पोपला मुह चलाती रहती । तब आखे झुकी रहती । सिर हिलता रहता ।

जीवन के अतिम दिनो मे बुआ की नारकीय हालत को देखकर मैं भी परेशान रहता । लेकिन जब भी बुआ से परेशानियो की बाते की तभी उत्तर मिलता—कहा है परेशानिया । पूरे गाव मे ही देख, लगे हैं कोई सुखी ? सबके सब चिताओ के समुद्र मे डूबे है । पता नही क्या हो गया है सभी को । चेहरे से हँसी एकदम गायब सी हो गयी । और मेरा चेहरा तो देख कैसा खुश

नजर आ रहा है। अपने बदरंग झुर्रीदार चेहरे को इस तरह दिखाती मानो उन्हें कितना सुख मिला है पूरी जिंदगी में। और अब भी कितनी सुखी हैं, वे।

लगातार अकेले पड़े-पड़े बुआ का मन भी मूज गया था, कहां तक अकेली पड़ी रहें। जड़ होकर पड़े रहने में तो अच्छे-अच्छे पत्थर हो जाते हैं। बुढ़ापे का शरीर चलना-फिरना मांगता है, जिससे कुछ हरकत हो और बूढ़ी निर्जीव काया में हलचल हो। एक दिन इतनी घबरा गयी कि घर छोड़ बाहर निकल आयी। कम-से-कम दस जगह गिरी होंगी, चला ही नहीं जा रहा था। बुढ़ापे में मन भी तो बेलगाम हो जाता है। लाठी पर समस्त बल टेकती, बहुत दूर-दूर चौड़े हुए पैरों को टेकती चल रही थी डग, डग। मानो तीन डगों में सम्पूर्ण सृष्टि को नापना चाहती हो। बड़ा-सा फूला पेट, हाथ-पैर हाथी जैसे, बड़ा डबल मुंह पीला छन्न। रंगहीन, कुरूप और भयावह लग रही थी। देखकर बच्चे डर गये थे सो औरतों ने अंदर की साकल लगा ली, आसों का भूत। वह कुछ नहीं समझ पायी कि यह क्या हो रहा है, उन्हें विश्वास नहीं हो पा रहा था कि बुआ और बीबी कहने वाले दरवाजे भी अचानक बंद हो जाते। वह जैसे ही दरवाजे के सामने पहुंचती अपनी पूरी शक्ति के साथ चिल्लाती—मैं भूखी हूं तीन दिन से रोटी···रोटी रो'। बंद दरवाजे नहीं खुले और खुले दरवाजे में रोटी की जगह भूत-भूत की आवाज आ रही थी। बुआ कुछ भी नहीं सुन रही थी और सुन भी रही हो तब भी अनसुना कर रही थी। जिंदगी सुनने में ही तो गयी। अब तक और किया ही क्या है।

कुछ ही दूर चली थी कि शरीर हिल उठा, लाख कोशिशों के बाद भी सधा नहीं गया, गिर पड़ी। इधर-उधर के दरवाजे खुल गये। थोड़ी देर होंठ फुसफुसाते रहे—लेकिन किसी ने कुछ भी नहीं सुना। शायद कोई सुनना भी नहीं चाहता था।

औरतें रोटियां ले-लेकर पास पटक गयीं। बुआ का बंद मुंह और खुल गया। आंखें सब देख रही थीं एक-एक कर।

चौकीदार ने उन्हींकी फटी, मैली उन्हें धोती उढ़ा दी। फफक-फफककर रो उठा था वह।

अर्थी के साथ दस-बारह आदमी ही बस। चौकीदार पीछे-पीछे चल रहा था—रोता हुआ।

उसी दिन शाम को चौकीदार की बहू ने घर को लीपकर बाहर से अपना ताला लगा दिया। किसी ने कुछ कहा तो कह दिया हमारी ननद का घर है तुम्हें क्या। फिर कौन बोले। और वैसे भी गाव मे बिना निजी स्वार्थ के कोई आदमी दूसरे के फटे में पैर नहीं डालता।

बुआ इस तरह दुनिया से जायेगी, मैं सोच भी नहीं सकता था। जिंदगी भर परेशानियों से लड़ते-झगड़ते अंत मे तीन दिन की भूखी मर जाना—अमानवीयता की हद है! लेकिन गांव है कि कहीं कोई चर्चा नहीं। चर्चा है तो मकान की। मोहल्ला खटीकान का हर आदमी मकान पर कब्जा करने के चक्कर मे है। गांव की इस हृदयहीनता ने बुआ को जिंदगी भर कष्ट दिये और शायद इसी कारण वे हमेशा-हमेशा को चली गयी।

कल का सुख

घटना ठीक दो साल पुरानी है। मुसिफी कोर्ट मे मेरे एक मुकदमे की तारीख थी। मैं साढ़े दस बजे के लगभग अदालत के कमरे के सामने पडी बेंच पर जाकर बैठ गया था। जमादार ने अभी थोडी देर पहले ही झाड़ू लगायी थी, अत. चारो ओर धूल का अम्बार नजर आ रहा था। चपरासी केवल मुसिफ साहब की कुर्सी-मेज साफ करके गाव से आये लोगो से अपनी कानूनी गाय दुह रहा था। पेशकार साहब आखो पर पतला-सा चश्मा लगाये अपनी कोत गरदन को नीचे झुकाकर फाइलो को सिस्टेमेटिक ढग से रख रहे थे। इतने मे ही अर्दली ने जरा तेज आवाज मे कहा—"साहब आ रहे है ''ए'''ए ''।" और साहब के आने के वाक्य को सुनकर हम सब ऐसे खडे हो गये मानो किसी मशीन का स्विच दबा दिया गया हो और मशीन एकदम चल निकली हो—बिना कुछ सोचे-विचारे। साहब आकर कुर्सी पर बैठ गये—बैठते वक्त एक लम्बी सास ली और पखे की तरफ देखकर जेब से सफेद रूमाल निकालकर अपना गजा सिर साफ किया, जिस पर पसीने की अनगिनत धाराए बह रही थी। चश्मा उतारा और मुह पोछा—बडे ही इत्मीनान के साथ और उसी गीले रूमाल से अपना चश्मा साफ कर छोटी और मोटी नाक पर रख लिया—चश्मा उनकी नाक पर बने साचे मे एकदम बैठ गया था। अर्दली ने अन्दर से एक गिलास पानी लाकर दिया और साहब ने पानी पीकर पुन. पखे की ओर देखा और एक लम्बी सास छोडकर पेशकार को फाइल देने को धीरे-से कहा। पेशकार ने हडबड़ाकर एक फाइल बड़े ही अदब से उनके सामने रख दी। साहब फाइल को खोलकर उसमे डूब गये।

एक महिला एक छोटे-से बच्चे की उंगली थामे दनदनाती हुई साहब के सामने आकर खड़ी हो गई। बच्चे ने एक फटी कमीज पहन रखी थी और उसके चेहरे को देखने से यह स्पष्ट लग रहा था कि वह शायद एक माह से नहाया ही नहीं है। बच्चा आश्चर्यचकित हो हरएक चीज को बड़े गौर से देख रहा था। महिला ने काले रंग का एक बुर्का ओढ़ रखा था जो गंदगी के कारण जगह-जगह मटमैला-सा हो गया था। एक जगह छीट का बड़ा-सा पैबंद लगा हुआ था और कई जगह सफेद मोटे धागे से सिलाई भी कर रखी थी। महिला ने साहब को सलाम किया। लेकिन साहब फाइल में इतने डूबे हुए थे कि उन्होंने उसका सलाम शायद सुना ही नहीं। महिला ने थोड़ी देर इन्तजार किया और साहब को नजर न उठाते देख उसने जोर-जोर से चीखना और रोना शुरू कर दिया—

"साब···मेरा खाविंद कुछ दिन पहले मर चुका है। साब, मैं बहुत गरीब हूं···एक तीन वर्ष का लड़का भी मेरे साथ है···मेरा मकान मेरे पड़ोसी ने छीन लिया है साब और मेरा सामान निकालकर बाहर फेंक दिया है, दारोगाजी से भी मैंने दरखास्त की, उन्होंने उल्टे मुझे ही गाली-गलौज देकर भगा दिया साब। अब पड़ोसी ने मेरे लड़के को भी मारने की धमकी दी है···मैं दोनों ओर से मर गयी साब···मेरा कोई नहीं है···सिवाय आपके। मुझ बेसहारा का मकान दिलवा दो साब···अल्ला ताला आपको तरक्की दे···आपकी बरक्कत करे···बगैर मकान के मैं कहां रहूंगी साब···मैं मर जाऊंगी···मर जाऊंगी साब' "और वह फूट-फूटकर रो पड़ी—अदालत के चहल-पहल भरे वातावरण में रुदन का करुण संगीत भर गया। लोगों का बरबस ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ।

साहब ने एक-एक करके अपनी दसों उंगलियां चटखाईं और बाएं हाथ की छोटी उंगली से कान खुजलाते हुए कहा—"मुकदमा लड़ो, जो कानून कहेगा—वह हम कर सकते हैं, रोने से क्या फायदा! रोना है तो बाहर सड़क पर जाकर रोओ" और रजिस्टर में कुछ देखकर लाल पगड़ी वाले अर्दली से कहा—"रामप्रसाद बनाम घूरे को आवाज लगाओ और इन्हें बाहर कर दो।" अर्दली ने उसे बाहर चलने को कहा तो उसने अन-सुना कर और जोर से रोना शुरू कर दिया—अर्दली हाथ पकड़कर उसे

बाहर ले जाने लगा और वह चीखती-रोती अर्दली के साथ जबर्दस्ती चली जा रही थी—"मैं रुपयों के बिना मुकदमा कैसे लड़ूंगी साब···मेरे पास क्या है साब···मैं···।" और अर्दली ने उसे बाहर घसीटकर फटे कनस्तर-से स्वर मे आवाज लगायी—"रामप्रसाद बनाम घूरे हाजिर है···ए··· ए।" उसका लड़का भी उसके पीछे-पीछे रोता-चीखता चला गया और बाहर जाकर उसके पावों से चिपटकर 'अम्मी-अम्मी' कहकर सुबकने लगा। उसने उसे गोदी मे लिया, अपने आंचल से उसके आंसू पोंछे और प्यार का हाथ उसके सिर पर फेरते हुए बाहर चली गई। बाहर जाकर एक बार फिर उसने दीवानी की विशाल और ऊंची मंजिल को ओर हिकारत भरी निगाह से देखा और दो मिनट बडबडाकर चली गयी···।

मेरे मुकदमे मे आज तारीख लग गयी थी, लेकिन फिर भी मेरा मन वहां से उठने को नही कर रहा था। मैं वहीं बेंच पर बैठा शाम के चार बजे तक सामने टंगी महात्मा गांधी की मुस्कराती तस्वीर को देखता रहा जिसके एक हाथ मे लाठी और दूसरे हाथ की पांचों उंगलियां अलग-अलग फैल रही थीं और नीचे एक सफेद कपड़े पर लिखा था—"वादकारी का हित सर्वोच्च है।" और सुनता रहा अनाम-बनाम की तीखी और बनावटी आवाजें, लेकिन हर आवाज के पीछे मुझे उसी महिला की चीख और रुदन सुनायी पडता रहा और उसकी मुरझायी आंखें और पीला चेहरा मेरी आंखों के आगे बरबस नाचता रहा। महात्मा गांधी का वह चित्र बार-बार हवा से हिलता और साथ ही लाठी और खुला हाथ भी, लेकिन 'वादकारी का हित सर्वोच्च है' स्थिर ही रहता।

ठीक दो साल बाद आज मैं कचहरी रोड पर तेज साइकिल चलाता विश्वविद्यालय जा रहा था कि वही महिला अपने पांच-वर्षीय पुत्र का हाथ थामे सामने से आती दिखाई दी—इन दो वर्षों मे समय और परिस्थितियों की मार ने उसे बूढ़ा कर दिया था, वही पुराना बुरका ठीक उसी प्रकार बांध रखा था कि उसका मुंह उसमे से स्पष्ट दिख रहा था। साइकिल मे ब्रेक लगाकर मैं उतर पड़ा और उसके सामने पहुंच सलाम कर अप्रत्याशित रूप से प्रश्नों की बौछार कर डाली—

"आपके मकान का क्या रहा ? आजकल आप कहा रह रही हे··· आपने मुकदमा लडा अथवा नही···उस दिन के बाद मैंने आपको शहर मे बहुत तलाश किया लेकिन आपका कही पता ही नही चला···।"

"आप···?"

"हा—मैं—जिस दिन आप अदालत गयी थी मै वही बैठा था, मेरी भी उस दिन एक तारीख थी, उसी दिन मे···।"

"पहले तो वह कुछ सकपकायी, लेकिन थोडा रुककर मेरी वास्तविक हमदर्दी को देखकर कहने लगी—

"मै अदालत से जाने के बाद दिल्ली चली गयी थी—प्रधानमन्त्री से मिलने, लेकिन वहां मिलना तो दूर, उनकी कोठी मे किसी ने घुसने भी न दिया और मुझे इस हालत में बाहर खडी देख पुलिस ने मेरे बच्चे सहित भिखारी कानून के तहत जेल मे बन्द कर दिया। वहा जेल में मेरे साथ···" उसका गला रुंध-सा गया, लेकिन सयम बरतकर उसने बात को आगे बढाते हुए कहा, "वहा से अभी पिछले सप्ताह ही छूटी हू—जेल मे रहकर घर की याद बहुत आती थी। कल ही दिल्ली से यहा आयी हू—सबसे पहले घर गयी वहा अब फैक्ट्री खुल गयी है, घर के सामने बैठकर बहुत रोयी। अब फैसला किया है कि भीख मागूगी और मुकदमा लड़ूगी—घर को ऐसे ही न जाने दूगी। घर मेरा है, मेरा अपना। अपने हक को पाने के लिए आखिर तक लड़ूगी, मैं जानती हू कि कानून भी पैसे वालो का साथ देता है, लेकिन फिर भी···। अपने हक के लिए न लडना कायरता है और मैं कायर बिल्कुल नही हू। यह मेरा बेटा है, बहुत होशियार और समझदार···अब तक तो जिंदगी मे सुख मिला नही, अब इसका सुख देखने और इसे मकान दिलाने की उम्मीद मे जिंदा रहूगी।" यह कह उसने एक लम्बी सांस लेकर आर्द्र नेत्रो से पहले मुझे देखा और फिर अपने बेटे के लम्बे-रूखे बालों पर स्नेह का हाथ फिराया।

लड़के ने मेरे आगे अपना एल्युमीनियम का भोडा-सा कटोरा फैला दिया—"बाबूजी···" मैने पैसे निकालने को जेब मे हाथ डाला कि उसने बेटे का हाथ पकड़ झिडकते हुए कहा—

"चल रे, कहीं अपनों से भी भीख ली जाती है? बाबूजी तो अपने हैं।" उसकी आंखों में कुछ तैर-सा आया, उसने आंखें नीची की और सलाम करके आगे बढ़ गया। बच्चा फिर-फिरकर बहुत दूर तक मुझे देखता रहा।

और वह मुझे किंकर्तव्यविमूढ़ छोड़ कल की उम्मीद में मुख का ताज उठाये बच्चे की उंगली पकड़े कठपुले की ओर बढ़ गयी।

टीका प्रधान

सारे मुहल्ले मे टीका का ही एक कमरा पक्का बना हुआ है। सामने एक छप्पर, उसके पीछे दो कच्चे कमरे, जिनमे उसका परिवार रहता है। मकान टीले पर तो है ही, साथ ही मुख्य रास्ते पर भी। इसलिए गाव मे घुसते समय सबसे पहले उसी पर नजर पडती है। हर मगलवार को गाव मे पैंठ लगती है और टीका के बने जूते खरीदने बाहर से भी लोग आते है। आस-पास टीका मार्का जूता प्रचलित है। खादर के जगल मे काम करना है तो टीका के जूते ही चल सकते हैं, शहर के जूते तो दो दिन मे बराबर। पैसा पास होते ही टीका ने सबसे पहला काम यह किया कि अपने चबूतरे पर शिव मन्दिर बनवा दिया और पास मे ही एक कुआ। इससे टीका की इज्जत बिरादरी मे और भी बढ गई। अब वह बिरादरी का सदस्य ही नही, सम्मानित नेता भी बन गया है। चमरौटी मे कोई बात हो जाती तो टीका की पक्की कमरानुमा चौपाल भर जाती और टीका अपने सारे काम छोड पहले उसे निपटाता।

गाव मे शाति थी। सब अपने-अपने कामों पर लगे थे, किसी को मरने तक की फुर्सत नही थी, परन्तु पडित जयराम न जाने कहा से सुन आये कि अगले महीने प्रधानी के चुनाव होगे। पडितजी ने अपना सारा गणित फैलाया और अन्त मे निष्कर्ष निकाला कि इस बार टीका को प्रधानी के लिए खडा करना उचित है। क्योंकि गाव मे ब्राह्मण अभी तक प्रधान नही हुआ न हो सकता, हमेशा जाट ही प्रधान होता है। जाटो की हठवादिता और मनमानेपन से सारा गाव परेशान है। इसलिए टीका ही ठीक रहेगा, क्योंकि टीका जीत भी गया तो भी जूते के नीचे ही रहेगा। प्रधान तो हम

ही रहेंगे, ए० डी० ओ० और दारोगा टीका के घर तो चाय पीने से रहे, पीयेंगे हमारे ही यहा और जब हमारे यहा चाय पीयेंगे तो फिर एक-एक जाट से बदला ले लेंगे।

पडितजी ने चुपके-से बनियों और मुसलमानों की राय भी ले ली, ताकि कल को आपस में फूट न पड़ जाये। जाटों से परेशान आये सभी ने अपनी सहर्ष स्वीकृति भी दे दी।

पडितजी ने टीका को घर बुलाया और स्पष्ट कह दिया कि वह प्रधान बना धरा है यदि अपनी बिरादरी को एक सूत्र मे बाधे रखे। टीका ने भी श्रद्धा से भरकर कहा—"बस पडितजी, आपकी कृपा चाहिए, बिरादरी तो मेरी ही है, उसका एक भी वोट कही नही जा पायेगा, आप बेखटके रहे।"

चलते समय पडितजी ने धीरे-से कहा—"बच्चों और औरतों का विशेष ध्यान रखना, ये ही आग-लगावा है।"

टीका पालागे कर चला गया तो पडितजी एक अतिरिक्त-सी प्रसन्नता का अनुभव करते हुए शीशम की मजबूत पाटियों से बने पलग पर लेट-कर हुक्का गुड़गुड़ाते रहे।

टीका की प्रसन्नता का भी कोई ठिकाना न रहा। पडितजी के प्रति उसके मन मे श्रद्धा-भाव हिलोरें ले रहा था। पडितजी को वह इस समय आदमी मानने को तो कदापि तैयार नही था, उसकी नजर में वह देवता थे, जो टीका को प्रधान बनाने के लिए ही यहा अवतरित हुए है। घर पहुचा, सपतिया को चुपचाप सम्पूर्ण चुनाव-पुराण बता दिया और कह दिया कि इन एक-दो महीनों के लिए वह बिल्कुल मिसरी बन जाये, कोई कुछ भी कहे, ध्यान ही न दे। अब प्रधानी आयी रखी है—बस।

सारे मुहल्ले मे नामी लड़ाकू सपतिया मिसरी की डली बन गई है। अब रोज खाना खा-पीकर घर-घर जाती है और एक-एक घटा बैठकर घर-विधि की बातें बतियाती है—घर मे कितने भाई हैं, क्या-क्या करते हैं, मा-बाप है कि नही, भौजाई कैसी है, तीज-त्योहार बिदा अच्छी देती है कि नही। ऊदा की नयी बहू को इसमे कुछ राज-सा लगा क्योंकि सपतिया के बारे मे उसने बहुत-कुछ सुना है और वह कहा दूर की है, पास

के कस्बे की तो है ही। उसने अपनी सास से भी कहा—लेकिन उसने उसे शांत कर दिया—

"मन की क्या है, कब बदल जाये, हमेशा एक-जैसा तो रहता नही? ऊपर से चाहे सपतिया कैसी ही लडाकू सही, लेकिन मन की कभी काली नही रही। तू तो कल-परसो आयी है। तू क्या जाने उसे, मैं तो उस दिन से ही जानती हू जब वह छोटी-सी बहू बनकर टीकाराम के घर आयी थी।"

ऊदा की बहू मन मारकर रह गयी, क्या कहती सास से !

आखिर प्रधानी का चुनाव आया और गाव मे नये राजनीतिक पैतरे बदले जाने लगे। सारे गाव का मानो राजनीतीकरण ही हो गया था। गाव का बच्चा-बच्चा भी बगैर राजनीति के बात नही करता। जाटो के विरोध मे सारा गाव एक हो गया, सबने अबकी बार प्रण कर लिया कि जाटो को हराना है, चाहे कुछ भी क्यो न हो जाये। टीका का मुह पालागे करते-करते सूख जाता है—वह ब्राह्मणो के दो-दो साल के बच्चो तक को पालागें करता है, और ब्राह्मण है कि सीधे मुह बात नही करते, अबकी बार वोट जो दे रहे हैं, उसे।

पडित जयराम की बैठक पर टीका ने दस सेर कुटा हुआ देसी तम्बाकू रख दिया है और एक गाडी पुराने कडा। रात-दिन हुक्का गुडगुडाते है पडितजी। धीरे-धीरे मूछे भी लाल पडने लगी है।

जाटो ने प्रधानी जाते देख लाठियों पर तेल मलना शुरू कर दिया है। रात को एक गोपनीय मीटिंग मुखियाजी के घर हुई और निर्णय लिया कि चुनाव के दिन सब तैयार रहे। अपने-अपने कट्टो को भी साफ कर ले, यदि कारतूस न हो तो बता दें। इतजाम हो जायेगा। और अन्त में सबने जी-जान से एक रहने की कसम खायी, ताकि बिरादरी की जाती हुई इज्जत को बचाया जा सके। सबके चेहरे उतरे हुए थे। मन मे लपटे उठ रही थी। औरते पिछवाड़े जगले के सहारे खडे होकर अपने बहादुर पतियो की मीटिंग सुन रही थी, जिसमें बातों से ज्यादा हुक्का बोल रहा था।

पारो नाई का घर मुखिया जी के घर से भिडा है। उसने मौके का फायदा उठाकर मुड़गेली के सहारे बैठ सारी गोपनीय बाते सुनी और पडित

जी को जाकर ज्यो-की-त्यो बयान कर आया। पडित जी ने भी इतजाम सोच लिया। सुबह उठकर थाने गये और दारोगा से सारी परिस्थिति बता दी, दारोगा ने एक हजार रुपये लेकर दस जाटो को बन्द करने का आश्वासन दिया। पडित जी ने टीका से कहा, टीका ने पैसे को तो मना किया, वास्तव मे इतने रुपये अब उसके पास कहा है, जो थे वह मदिर और कुआ मे खर्च हो गये। परतु इज्जत बचाने के लिए अपना दस बीघे खेत पडितजी के यहा गिरवी रख दिया। पडितजी ने एक हजार मे से पाच सौ दारोगाजी को दिया और साथ ही यह भी कहा कि—"टीका पर क्या है जो पाच सौ देता, यह तो हमारी इज्जत का सवाल है अतः हमने ही…।" और मूछो मे ही हँसकर रह गये पडितजी। दारोगा ने भी अपनी ओर से कुछ कसर न उठा रखने का वायदा किया।

चुनाव का प्रतीक्षित दिन भी आ गया, सुबह से ही औरतो के टोल के टोल गीत गा-गाकर आने शुरू हो गये। सारे गाव मे एक प्रकार का अजीब सगान वातावरण बन गया। सभवत पहली बार लोगो मे चुनावो के प्रति इतना उत्साह रहा है। एक-एक वोट के प्रति लोग सचेत हैं। जाटो की बहुत-सी लडकिया भी साडी का लम्बा घूघट मारकर भरी हुई औरतो के वोट डाल गई हैं। उधर मुसलमानो मे बुरका ओढकर लडके भी वोट डाल गये। बुड्ढे-बुढियो को खाट पर डालकर लाया गया। शाम तक इतने वोट पडे कि जाटो को लगा कि बस अब हार निश्चित ही है तो वे अपनी लाठिया लेकर निकल पडे और मौके की तलाश मे बैठे दारोगा ने प्रमुख दस लोगो को घटना-स्थल पर पहुचने से पूर्व ही पकड लिया। पडितजी के द्वारा दिए गये कट्टे भी उनके पास से ही पकडे बताये गये। अब मुखिया जी की हालत खस्ता हो गई। करे तो क्या करे ? जिन्दगी मे पहली बार अपनी जाहिली पर क्रोध आया।

जाटो के घरो मे केवल औरते रह गई है—और रह गये हैं निमूछिये लडके।

शाम के वक्त टीका अपना वोट डालने आया। चमरौटी के बड़े-बूढो के बीच साफा बाधे चल रहा था—गर्दन फुलाकर। पीछे-पीछे लडके 'टीका राम की जय हो' के नारे लगाते हुए। जब से टीका ने सुना कि जाट पकडे

गये और हमारी ओर से इतने वोट पड़े है कि बम्बई से लेकर तीन साल पहले तक के स्वर्गवासी भी गैरहाजिर नही रहे तो उसे लगा कि बस अब तो प्रधान हो ही गये। सामने से पडित जी आते दिखायी दिये, आमना-सामना हुआ। लेकिन टीका ने पालागें तो दूर उनकी ओर देखा तक नही। हालाकि पडितजी को बहुत बुरा लगा लेकिन क्षोभ को पीकर खरगा से कहा—जब टीका वोट डालकर लौटे तो कह देना कि, मेरी बैठक पर आ जाए, जरूरी काम है। मैं अब सीधा घर ही जा रहा हू।

खरगा पडित जी का सदेश लेकर टीका के पास पहुचा तो उसने साफ-साफ कह दिया कि आज तो नही जा पाऊगा। शाम को हमारे मुहल्ले मे आल्हा होगी। पडितजी को यदि कोई जरूरी काम हो तो यही आ जाये। या किसी से कहला भेजें, जो कुछ कहना हो।

साथ ही किसी लडके ने पीछे से कह दिया—पडितजी के दिन तो लद गये, प्रधानी अब जाटो पर नही टीकाराम पर समझो और टीकाराम अब टीकाराम है—पडितजी की रियाआ नही। कल वह टीकाराम ही नही, प्रधानजी भी होंगे। तब पचायत पडित जी की बैठक पर नही, टीकाराम की चौपाल पर होगी। अतः पडितजी अब बुलाने की आदत छोड दें, वरना अकेले अपनी बैठक पर बैठे हुक्का गुड़गुडाते रहे। कोई पूछने वाला नही है।

खरगा जल-भुनकर चला गया और सारी घटना नमक-मिर्च मिलाकर पडितजी को कह सुनायी। पडितजी पहले से ही जले-भुने बैठे थे और भी भभक उठे। एक सुलझे हुए राजनीतिज्ञ की तरह उन्होंने तत्क्षण ही इस अपमान का बदला लेने की ठानी। खरगा सामने खडा रहा और पडितजी सामने रखे हुक्के की नय को एक हाथ से थामे दूसरे हाथ से मूछे ऐंठते सोचते रहे। कुछ देर बाद एकदम उनके मन मे यह विचार कौधा कि क्यों न कुछ ऐसा किया जाये, जिससे साप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। टीका के होश भी ठीक हो जायें जिससे वह अगले चुनाव तक ऊपर गर्दन न उठा सके और जाट भी समझ जाये कि असली चाणक्य की सतान है पडित जयराम। उनके चेहरे पर प्रसन्नता की लहर-सी दौड गयी। सुनहरी मूछें कुछ देर को खिल उठीं। पडितजी ने कसकर हुक्के मे एक घूट मारी और

खरगा को पास बुलाकर उसके कान मे धीरे से कुछ कहा। खरगा चुपचाप मुककर गभीर बना वहा से चला गया। पडितजी बहुत देर तक हुक्का गुड-गुडाते रहे। अकेले बैठकर। माथे की सलवटें असाधारण रूप मे चमक रही थी। और आखो मे योजना तैर रही थी।

खरगा सीधा अपने घर गया और वहा से चुपचाप कुछ सामान लेकर टोटा को बुलाता हुआ—खेर पर पहुचा। झुटपुटा-सा हो गया। पचास गज दूर का आदमी भी दिखायी नही दे रहा था। सामने मे दो साइकिल आ रही थी और तीसरा आदमी पैदल। जैसे ही वे तीनो पास आये कि खरगा और टोटा धर्मशाला से बाहर निकल पडे, एक-एक लाठी पीछे से जमायी और वोट के डिब्बे लेकर यमुना की ओर भाग छूटे। अड्डा के सहारे पहुचकर उन्होने पीछे फिर कर देखा—कोई नही था, दूर-दूर तक अधेरी रात सब कुछ अपने मे समेट चुकी थी। यमुना का जल धीरे-धीरे वह रहा था, मोटे-मोटे कछुए बाहर पार पर बैठे थे, वे उन्हे देखकर एकदम अन्दर जल मे घुस गये। खरगा-टोटा ने अदर जल मे घुसकर डिब्बे डुबो दिये, छप-छपाक् की आवाज हुई और फिर वही रात्रि की अखड शाति। हाथ-पैर धोये, पानी पिया और वही किनारे पर बैठकर एक-एक बीडी इत्मीनान से फूकी और दूसरे रास्ते से गाव की ओर चल दिये।

पडितजी बैठक पर अकेले बैठे थे। खाना भी नही खाया—अभी तक। चिलम भी ठडी पडी थी। घर मे कई बार खाने की खबर आयी, लेकिन उठकर नही गये। चमरौटी मे खटक रही ढोलक की तीखी आवाज उन्हे साल रही थी। उनके मन मे बार-बार कुछ शकाएँ उठती और चेहरे पर उनके अक्स उभर आते परन्तु मूछे ऐंठते हुए पडितजी शाति से मन-ही-मन उनका समाधान खोज निकालते। जग्गी को कई बार आवाज दी, चिलम भरने के लिए लेकिन वह कहा था वहा। वह तो टीका की चौपाल पर बैठा आल्हा सुन रहा था। आल्हा तो चार-चार कोस तक भी नही छोडता वह। गाव मे आल्हा हो और जग्गी न जाये, यह कैसे हो सकता है। पडितजी की मूछे उठते-उठते सुतली की तरह हो गई हैं—ऐंठादार। खरगा और टोटा आये और पडितजी के कान मे सूचना दी। पडितजी की बाछे खिल उठी—खरगा टोटा की पीठ ठोकी और घर ले गये खाना खिलाने। तीनो ने साथ

बैठकर ही खाना खाया।

खाना खाकर निकले तो सुना गाव में कुहराम सा मच गया है। चमरौटी की ढोलक अचानक ठिठक गई है और आल्हा गायक शकर का स्वर घुटकर रह गया है। यह सब देख-सुनकर पंडितजी की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा। हो साले प्रधान, हम भी तो देखें—कैसे···। पडितजी बुदबुदाये। टोंटा भट्टी में सुलगती आग में से चिलम भर लाया। पडितजी हुक्का गुडगुड़ाते रहे और खरगा-टोटा चिलम।

रात-भर गाव में इस अनहोनी पर अटकलें लगती रहीं—शायद ही कोई सो पाया हो। सबसे अधिक नुकसान हुआ छोटे-छोटे लडकों को चिलम भरते-भरते हाथ भी जल गये है कहीं-कहीं।

चमरौटी में अचानक शांति देख कुत्तों ने सामूहिक स्वर में रोना शुरू कर दिया।

दिन निकलते ही दारोगा आये। पडितजी की बैठक पर चाय-पानी हुई। टीका को बुलाया गया। गर्दन झुकाकर आया टीका। एक रात में ही उसका चेहरा जर्द पड़ गया है। शर्म की वजह से नजर भी नहीं उठ रही है—ऊपर। दारोगा ने कई लोगों की गवाही ली और साथ ही जाटिनियो को चेतावनी दी कि या तो वे असली आदमियों के नाम बता दे, वरना एक-एक घर का पानी बंद करा दूगा।

पंडितजी ने पाच सौ रुपये देकर मामले को वहीं रफे-दफे कर दिया।

मुखियाजी की पत्नी और कोई आसरा न देख हल्ली बनिया के पास गहने गिरवी रख अपने आदमी को छुड़ा लायी।

तीसरे दिन पचायत-मंत्री ने बताया कि चुनाव रद्द हो गया है। टीका औंधा पड़ा डकरा रहा है धर्मशाला में और पडितजी टीका का दिया देसी तम्बाकू ठाठ से पी रहे हैं—मूछे फैराकर। बूढ़ी देह में फुरफुरी-सी उठ रही है।

●●●